संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

अंक : १५९ मार्च २००६ मूल्य : रु. ६/- हिन्दी

ऋषि प्रसाद
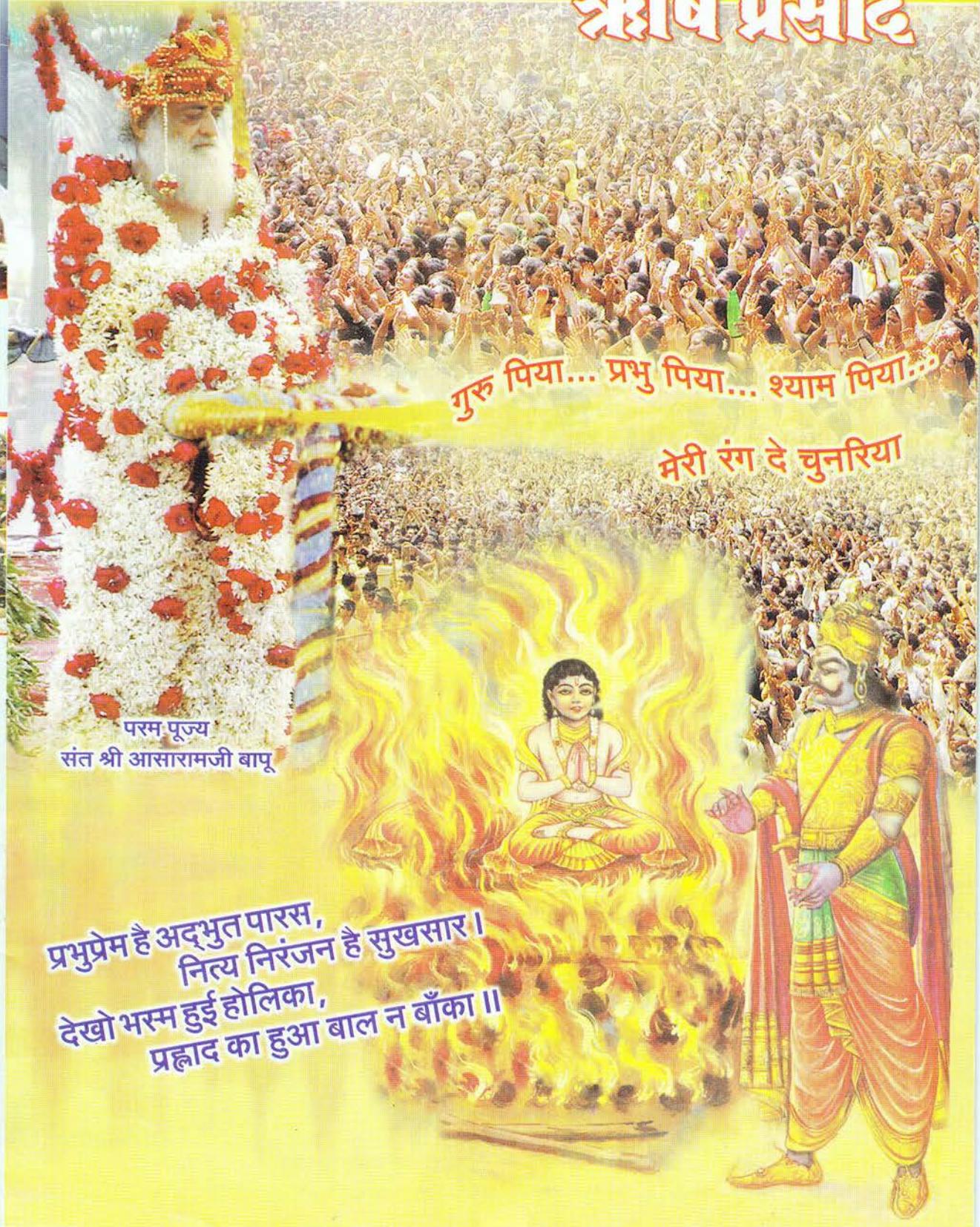
गुरु पिया... प्रभु पिया... श्याम पिया...

मेरी रंग दे चुनरिया

परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू

प्रभुप्रेम है अद्‌भुत पारस,
नित्य निरंजन है सुखसार ।
देखो भस्म हुई होलिका,
प्रह्लाद का हुआ बाल न बाँका ॥

भिवंडी जि. थाने (महा.) एवं भूपाल सागर, जि. चित्तौड़गढ़ (राज.) में कंबल वितरित करते पूज्यश्री के शिष्य।

सारे प्राणी हों सुखी, दुखिया रहे न कोय। देखे मंगल ही सदा, दूर अमंगल होय।। इस मंगलमयी भावना से बलांगीर (उड़ीसा) के अस्पतालों में फल-वितरण व रायपुर (छ.ग.) में 'निःशुल्क दंत चिकित्सा शिविर' का आयोजन।

सबके मन में खुशियाँ छायें, सबके मुख पर मुस्कान रहे। हो तृप्त जगत में हर कोई, प्रभु चरणों में नित ध्यान रहे।।
हर्रई, जि. छिन्दवाड़ा (म.प्र.) एवं रतननगर, जि. चुरु (राज.) में अनाज-वितरण।

दुर्गापुर, जि. चन्द्रपुर (महा.) में वस्त्रों तथा पिंजौर, जि. पंचकूला (हरि.) के गरीब बच्चों में जूते-मौजे का वितरण कर आंतरिक आनंद का अनुभव करते पूज्यश्री के शिष्यगण।

वर्ष : १६ अंक : १५९ मार्च २००६ फाल्गुन-चैत्र, वि.सं.२०६२-६३ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

इस अंक में

पूज्य बापूजी का साफ-स्पष्ट संदेश वेलेन्टाइन डे पर

पृष्ठ : २३

हम वासी उस देश के...

पृष्ठ : १६

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	रु. २००/-
(४) आजीवन	रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	रु. ३००/-
(४) आजीवन	रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	US $ 20
(२) द्विवार्षिक	US $ 40
(३) पंचवार्षिक	US $ 80
(४) आजीवन	US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US$20	US$80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

गुरु ने अपनाया कब ?

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

उड़िया बाबा बड़ी ऊँची कमाई के धनी और ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी थे। आनंदमयी माँ और स्वामी अखंडानंद सरस्वती उन्हें खूब मानते थे । उनकी ब्रह्मज्ञान में ऐसी ऊँचाई थी कि घाटवाले बाबा भी उनका आदर करते थे।

उड़िया बाबा से किसीने पूछा : ''कैसे मानें कि गुरुजी ने हमको अपना लिया है ?''

बाबा बोले : ''जैसे गुरु अपने हाथ-पैर से काम लेते हैं ऐसे हमसे काम लेने लगें। अपने हाथ-पैर से व्यवहार करते समय किसीसे पूछना नहीं पड़ता, संकोच नहीं होता। पैर पर मच्छर बैठा है तो मार दिया थप्पड़... ऐसे ही जब निःसंकोच होकर हमसे व्यवहार करें, डाँटना हो तो 'बेचारा दुःखी तो नहीं हो जायेगा ? ऐसा तो नहीं होगा ?'- इस प्रकार की परवाह न करें तो समझो, गुरु ने हमको अपना लिया है।''

हमारी गलती गुरु को बड़ी दिखे और हमारी घड़ाई करने में उन्हें संकोच न हो। यदि शिल्पी सोचे कि 'बेचारे पत्थर को कहीं छैनी न लगे' तो पत्थर पत्थर ही रहेगा, मूर्ति न बन सकेगा। गुरु निःसंकोच होकर हमारी गलती निकालने में तत्पर हो जायें तो समझो कि हमारा परम कल्याण हो गया।

शिष्यों के लिए एक बड़ा खतरा है। जिसको गुरु ने अपना मान लिया, उसके लिए भी एक बड़ा खतरा है। खतरा क्या है ?

निजजन कठोरा... जैसे आपके कपड़े में जरा-सा दाग लगता है तो आपको खटकता है, ऐसे ही गुरु को हमारी बेवकूफी, हमारी गलती, हमारी कमजोरी खटकती है तो गुरु अपना हथियार उठाते हैं।

शिष्य को पापों का फल भोगने के लिए नीच योनियों में न जाना पड़े, इसलिए गुरु कभी-कभी उसको डाँट-फटकारकर भी उसके कर्म काटने का काम करते हैं। फिर वह कर्म कटवाने में आनाकानी करे तो जैसे माँ बच्चे की नाक पोंछती है और बच्चा आनाकानी करता है तो कान पकड़कर ज्यादा जोर-से नाक दबा देती है, ऐसे ही गुरु शिष्य की गलतियाँ निकालने के लिए कृपा करके कठोरता का व्यवहार करते हैं। कैसी है गुरु की करुणा-कृपा ! किंतु शिष्य गुरु की इस करुणा-कृपा को समझ नहीं पाते, झेल नहीं पाते तो मन में गुरु के प्रति अश्रद्धा आने लगती है । यही बड़ा खतरा है । इस खतरे से निकल गये तो फिर शिष्य को ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं है।

अज्ञान के मूल को हटानेवाले, जन्म-मरण के कारणों को और पातकों को भस्मीभूत करनेवाले, ज्ञान और वैराग्य के अमृत को हमारे दिल में भरनेवाले सद्गुरु का सत्संग-सान्निध्य मिल जाय तो कितना अहोभाग्य ! उनकी डाँट भी मिल जाय तो कितनी सुहावनी होगी ! वे डंडा लेकर पिटाई भी करने लग जायें तो कितने मधुर होंगे वे डंडे !

हकीकत में झगड़ा शिष्य और गुरु का नहीं होता। शिष्य की कमजोरियों और गुरु के सिद्धान्तों के बीच लड़ाई होती है। शिष्य की गुरु में श्रद्धा और प्रेम सदा बना रहे यह संभव ही नहीं है । शिष्य जिस दुनिया में रहता है, गुरु उससे निराली दुनिया में रहते हैं। गुरु नाम-रूप से परे, अनंत ब्रह्मांड जिसमें व्याप रहे हैं उस सच्चिदानंद ब्रह्म में स्थित हैं । ब्रह्माजी और ब्रह्माजी का लोक, विष्णुजी और विष्णुजी का लोक, शिवजी और शिवजी का लोक जिसमें पड़े हैं, उसको भी ढाँपे हुए हैं गुरु महाराज और शिष्य अपने हाथ-पैर-नाक-कान-मुँह को, अपनी मन-बुद्धि को 'मैं' मानता है। अतः दोनों का मेल संभव ही नहीं है। शिष्य शरीर में रह रहा है, जाति में रह रहा है और २-३ बेटों को पालने-पोसने में ही सारी जिंदगी खपा रहा है। शिष्य कोल्हू के बैल की नाईं जिंदगी बिता रहा है, कमाया-खाया, खाया-कमाया करके जीवन पूरा कर रहा है, मन को जो अच्छा लगा वही कर रहा है... ऐसे शिष्य को परमात्मप्राप्ति के पथ पर ले जाना कितना

(शेष पृष्ठ ६ पर)

मजा या सजा ?

यह संसार कागज की पुड़िया, बूँद पड़े गल जाना है।
यह संसार काँटों की बाड़ी, उलझ पुलझ मर जाना है।
यह संसार झाड़ और झाँखर, आग लगे जल जाना है।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, सद्गुरु नाम ठिकाना है॥

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक भक्त के घर में चार चोर घुसे। पुराने जमाने के बने घर में बड़े-बड़े कमरे थे। एक कमरे को उन्होंने छान मारा पर मिला कुछ नहीं। खोजते-खोजते दूसरे कमरे में गये, तीसरे कमरे में गये पर वहाँ भी कुछ नहीं मिला। आखिर में गणपतिजी की एक बड़ी-सी मूर्ति दिखी। चोरों ने विचार किया कि 'यह गणपतिजी का भक्त लगता है, इसलिए इतनी बड़ी मूर्ति बनवायी है। गणपतिजी का पेट बहुत बड़ा है। इनके पेट में ही माल रखा होगा। इनके इतने बड़े-बड़े कान हैं, इसीमें से हाथ डालकर देखें।'

भीतर, कान में बिच्छू देवता बैठे थे। एक चोर ने धीरे-से हाथ डाला तो बिच्छू ने मारा डंक। अब चोर क्या करे, किसको बताये ? उसने सोचा : 'मेरे को तो सजा मिल गयी पर भक्त के घर में आकर ये कोरे क्यों रहें ?'

दूसरे ने पूछा : ''क्या है ?''

''आहाहा... आहाहा... क्या ठंडक है ! हिमालय को भी मात दे ऐसी ठंडक ! आहाहा... हाथ ठिठुर गया है।'' दर्द तो हो रहा था किंतु 'आहाहा...' कर रहा था।

दूसरे ने हाथ डाला, उसको भी बिच्छू ने डंक मारा। उसने सोचा, 'इसने मुझे तो उल्लू बनाया, अब बाकी के दो क्यों रह जायें ?' उसने भी कहा : ''आहाहा... क्या ठंडक है ! फ्रिज की ठंडक भी इसके सामने कुछ नहीं... गणपति दादा की ठंडक निराली है। आहाहाऽऽऽ... आहाहाऽऽऽ... क्या ठंडक है !''

बाकी जो दो बचे थे, उनके मुँह में पानी आ गया कि 'हमारी बारी कब आयेगी ?' तीसरे ने हाथ डाला तो वह भी समझ गया किंतु उसने भी सोचा कि 'चौथा क्यों रह जाय ?' वह भी बोला : ''आहाहा... आहाहा... वाह ! क्या ठंडक है ! मैं तो इस ठंडक का बयान ही नहीं कर सकता !''

चौथे ने भी डाला हाथ। बिच्छू का डंक लगा तो चिल्लाया : ''क्या यही ठंडक का मजा है ?''

इस संसार में भी ऐसा ही है। एक शादी करके आता है, उससे पूछो : 'क्या हाल है ?'

'बहुत मजा है।'

दूसरा शादीवाला भी कहता है : 'बहुत मजा है... बहुत मजा है।'

शादी में दुल्हे को सजाते हैं, दुल्हन को सजाते हैं। दोनों को पटाते हैं कि 'इसमें बहुत मजा है।' ऐसा करते-करते सब एक-दूसरे को संसार में धकेल रहे हैं और 'आहाहा... आहाहा...' कर रहे हैं।

'आजीविका के लिए पर्याप्त धन नहीं मिलता, पत्नी झगड़ालू है, बेटा कहना नहीं मानता, बेटी की शादी नहीं होती...' इस प्रकार की अंदर 'हाय-हाय' हो रही है और बाहर बोल रहे हैं : 'आहाहा... आहाहा... संसार में बड़ा मजा है !'

संसार के मजे बड़ी सजा देनेवाले हैं। जीव सुख लेने के लिए जितना भटकता है, उतना दुःखी होता जाता है। धरती पर एक भी समझदार आदमी ऐसा नहीं कह सकता कि 'मैंने फलाना काम दुःखी होने के लिए किया था।' फिर भी देखो तो सब दुःखी ही पाये जाते हैं।

भटक मुआ भेदु बिना पावे कौन उपाय ?
खोजत खोजत युग गये पाव कोस घर आय॥

इस भेद को, रहस्य को जाननेवाले महापुरुष नहीं मिलते तब तक जीव संसार में भटकता ही रहता है। ब्रह्मज्ञानी गुरु की कृपा के बिना वह दर-दर के धक्के खाता ही रहता है।

तुलसी हरि गुरु कृपा बिना। बिमल बिबेक न होइ।
एक भूला दूजा भूला, भूला सब संसार।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

साधना प्रकाश

मंत्रदीक्षा के १८ दिव्य लाभ

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जिनके जीवन में सद्गुरु की मंत्रदीक्षा है, साधना है, सत्संग है उनके जीवन में १८ प्रकार के आध्यात्मिक फायदे बिना बुलाये ही आ जाते हैं। जैसे छाया आपके पीछे अपने-आप आती है, ऐसे ही १८ दिव्य लाभ उनके जीवन में स्वाभाविक ही आ जाते हैं।

मंत्रदीक्षा का यह पहला चमत्कार है कि उनके मन पर सुख और दुःख का प्रभाव पहले जैसा नहीं पड़ता। वे सुख और दुःख के साथ जल में पड़े तिनके की नाईं, पीपल के पत्ते की नाईं बहने नहीं लग जाते। दुःख उनको पहले जैसे नहीं सता सकते और सुख उन्हें लोलुप नहीं बना पाते। सुख आता है या दुःख आता है तो सत्संग से, नाम कमाई से उसको देखनेवाली वृत्ति पाकर वे सुख और दुःख के शोधक हो जाते हैं।

भगवान के नाम और सत्संग से छोटे-से-छोटे मनवाले भी ऊँचे मनवाले बन जाते हैं और ऊँचे मनवाले ऊँचे पद को पा लेते हैं।

दूसरा फायदा है कि उनके पाप मिटने लगते हैं और पुण्य संचित होने लगते हैं। पहले जितनी पापवृत्ति होती थी, जितने बेधड़क पापकर्म करते थे, अब बुराई करते समय उतने बेधड़क नहीं रहेंगे बल्कि हृदय की धड़कनें बढ़ जायेंगी और बुराइयाँ कम होने लगेंगी।

तीसरा फायदा है कि सांसारिक वासनाएँ कम होने लगेंगी, पहले जैसी नहीं रहेंगी। जैसे तुलसीदासजी, सूरदासजी को पहले खूब वासनाएँ थीं, पत्नी के ऊपर, वेश्या के ऊपर मोहित हो गये किंतु भगवान का आश्रय लिया और नाम कमाई की तो बाद में इतने महान संत हो गये कि तुलसीदासजी की रामायण से और सूरदासजी के पदों से लाखों-लाखों लोग मार्गदर्शन पा रहे हैं।

तो भगवान के नाम और सत्संग से छोटे-से-छोटे मनवाले भी ऊँचे मनवाले बन जाते हैं और ऊँचे मनवाले ऊँचे पद को पा लेते हैं। सूरदासजी, गोस्वामी तुलसीदास तथा और भी कई मनुष्य ऊँचे मनवाले बनकर ऊँचे पद को पा के ब्रह्मज्ञानी महापुरुष हो गये।

चौथी बात है कि मंत्रदीक्षा और सत्संग से चित्त की चंचलता मिटने लगती है, मन की कल्पनाएँ-मनोराज्य और छिछरापन मिटने लगता है।

पाँचवाँ फायदा है कि उसके अंतःकरण में अंतर्यामी परमात्मा की प्रेरणा प्रकट होने लगती है। राम, कृष्ण, हरि आदि नाम प्यारे लगने लगते हैं। जैसे ध्रुव और प्रह्लाद ने भगवान का नाम जपा तथा रसमय जीवन बनाकर भगवान को साकार रूप में भी प्रकट कर लिया, ऐसे ही साधक अपने हृदय में भगवान के रस को और प्रेरणा को प्रकट कर लेते हैं। अंतःकरण में अंतर्यामी परमात्मा प्रकट होता है, ऐसा उनको आभास होगा।

नाम कमाई करते जायेंगे तो अभिमान गलता जायेगा - यह **छठा गुण** प्रकट होगा। पहले जो धन का अभिमान, कर्तृत्व का अभिमान, भोक्तृत्व का अभिमान, सुखीपने का अभिमान, दुःखीपने का अभिमान उनकी शक्तियों का ह्रास कर रहा था, वह गलने लगेगा। जैसे रावण को अभिमान ने अंत में मिटा दिया,

वैसे ही अभिमान उनको (जापक को) मिटाये उसके पहले 'नाम' भगवान अभिमान को ही गला देगा और जापक को भगवान से मिला देगा।

जो निगुरे लोग हैं वे चाहे धनी हों, चाहे निर्धन हों, अधिकारी हों या चपरासी हों उनके घर जाओ तो उनमें अहंकार, रूखापन और कुछ हेकड़ी दिखेगी पर जिन्होंने मंत्रदीक्षा ली है, नाम-दान लिया है उनके स्वभाव में हेकड़ी पहले जैसी नहीं दिखेगी। उनके जीवन में अधिकार जमाना या विशेषता दिखाना नहीं होगा बल्कि स्नेह होगा, नम्रता होगी, प्यार होगा।

बुद्धि में बुद्धिदाता के नाम की कमाई का प्रभाव पड़ेगा तो **सातवाँ फायदा** यह होगा कि बुद्धि में शुद्ध-सात्त्विक प्रकाश आयेगा। जितने भी दुःख और बंधन हैं वे बुद्धि की हीनता से ही हैं।

प्रज्ञापराधो मूलं सर्वरोगाणाम्।
प्रज्ञापराधो मूलं सर्वदुःखानाम्।

बुद्धि के अपराध से ही आदमी जन्म-मरण में जाता है, दुःखों में जाता है, विकारों में जाता है, आसुरी योनियों में जाता है और बुद्धि में अगर भगवत्सत्ता का संचार हो गया तो जीवात्मा परमात्मा को पाता है।

मंत्रदीक्षा और सत्संग से जो फायदे होते हैं, वे दुनिया की किसी भी दूसरी साधना से, दूसरी चीजों से संभव ही नहीं हैं।

आठवाँ फायदा यह कि अविवेक नष्ट होने लगता है और विवेक जगने लगता है। क्या खाना क्या न खाना, क्या बोलना क्या न बोलना, क्या करना क्या न करना - ऐसा विवेक उनके अंदर जागृत होने लगता है।

नौवाँ फायदा होगा कि उनके चित्त को समाधान, शांति मिलती है; भगवद्रस, अंतर्मुखता का रस और आनंद आने लगता है। कभी-कभी ओंकार का जप अपने-आप होने लगता है।

दसवाँ फायदा है कि आत्मा व ब्रह्म की एकता का ज्ञान प्रकाशित होगा कि मेरा आत्मा परमात्मा का अविभाज्य अंग है। जैसे तरंग पानी से अभिन्न है, गहना सोने से अभिन्न है, ऐसे मेरा आत्मा परमात्मा का अभिन्न अंग है और सबमें वही एक परमात्मसत्ता है। जैसे सागर में तरंगें भिन्न हैं, झाग भिन्न हैं, बुलबुले भिन्न हैं परंतु सागर की गहराई में एक ही पानी है, ऐसे ही भिन्न-भिन्न व्यक्तियों, भिन्न-भिन्न नामों, भिन्न-भिन्न रूपों में भी अभिन्न चैतन्य एक है। जैसे आकाश सबमें एक है, ऐसे चिदाकाश परमेश्वर सबमें एक है - इस ज्ञान पर उनको विश्वास होने लगता है और इस कारण उनके चित्त का भय, शोक पहले की अपेक्षा कम होते-होते मिटने लगता है।

ग्यारहवाँ फायदा यह होगा कि उनके हृदय में भगवत्प्रेम निखरने लगता है; भगवान के नाम में प्रेम होने लगता है, भगवान की कथा में प्रेम बढ़ने लगता है। नाम-दान लेने से पहले इतना भगवत्प्रेमी हृदय नहीं था, जितना नाम-दान लेने के बाद हृदय में भगवत्प्रेम आया। भगवान का नाम लेते ही भगवद्भाव उभरने लगता है।

भगवत्प्राप्त महापुरुष के दर्शन से उनको रोमांच होने लगता है और भगवान की कथा सुनकर, भगवत्प्राप्त संतों को देखकर उनके जीवन में प्रसन्नता आने लगती है। वे थोड़ा ध्यान करें तो अंदर में आनंद-आनंद आने लगेगा, हँसी छूटने लगेगी, प्रकाश दिखने लगेगा और भी दिव्य अनुभव होंगे। ये लाभ वे अपने जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। दूसरे लोग भी उनको देखकर अनुमान लगा सकते हैं।

बारहवाँ फायदा यह कि परमानंद की प्राप्ति होगी और नाम तथा नामी, भगवान व भगवान का नाम एक है - ऐसा ज्ञान होने लगेगा।

तेरहवाँ फायदा : यदि उनकी नाम-कमाई की गाड़ी ने अच्छी तरह से गति पकड़ी है तो नाम ब्रह्म में और सत्संग में उनकी प्रीति बढ़ जायेगी। कोई नाम की, शास्त्र की, गुरु की निंदा करेगा तो वह उनकी श्रद्धा तोड़ने में सफल नहीं होगा।

चौदहवाँ फायदा होता है : भगवान का साकार रूप चाहे चतुर्भुज हो चाहे द्विभुज हो, चाहे गणपति का हो लेकिन है परमात्मा का स्वरूप, ऐसे ही नाम भी परमात्मा का स्वरूप ही है।

पंद्रहवाँ फायदा : जैसे चिंतामणि, कल्पवृक्ष,

कामधेनु की शरण में जाने से मनोरथ पूरे होते हैं, ऐसे ही उनके मनोरथ पूर्ण होने लगते हैं। कभी-कभी वे जो चिंतन करते हैं वे कार्य सहज में होने लगते हैं अर्थात् मनोरथ पूरे होते हैं।

अंतर्यामी की शांति में जाते हैं तो मन की इच्छा पूरी हुई कि नहीं हुई - इसका अधिक महत्त्व नहीं रहता। इच्छा मिटते ही भगवान के स्वरूप की प्रीति, नित्य नवीन रस उनको प्राप्त हो जाता है।

और महाराज ! **सोलहवीं बात** उनके जीवन में ऐसी अद्भुत होती है कि जैसे चैतन्य महाप्रभु को कितने ही प्रलोभन मिलते हैं लेकिन वे भगवद्रस में छके रहते हैं। राजा जनक के जीवन में कितना भी वैभव आता है तो भी भगवद्रस में छके रहते हैं।

शुकदेवजी महाराज के जीवन में कितनी विरक्तता रहती है और कितना यश आता है पर वे दोनों में सम रहते हैं। जैसे रामजी के जीवन में बड़ा भयंकर हादसा हो जाता है। राज्याभिषेक की जगह पर रामजी को वनवास मिला लेकिन रामजी के चित्त में क्षोभ नहीं होता। इस प्रकार जापक के चित्त में भी पहले की अपेक्षा हिलचालें कम होने लगती हैं और समत्वयोग में पहुँचने के वे काबिल बनते जाते हैं।

सत्रहवाँ फायदा होगा कि साकार अथवा निराकार जिसको भी वे मानेंगे, उसीकी प्रेरणा से उसके ज्ञान, आनंद में और निकटता का एहसास करने लगेंगे।

अठारहवाँ फायदा यह हो जायेगा कि उनको दुःखालय संसार में, दुन्यावी चीजों में पहले जैसी आसक्ति नहीं रहेगी और वे बिना वस्तु के, बिना व्यक्ति के, कैसी भी परिस्थिति हो खुश, प्रसन्न, संतुष्ट रहने में सफल होने लगेंगे।

बुरे-से-बुरा व्यक्ति भी अगर नाम कमाई के रास्ते चलता है तो उसमें ये अच्छाइयाँ आने लगती हैं, १८ प्रकार के ये फायदे होते ही हैं। मंत्रदीक्षा और सत्संग से जो फायदे होते हैं, वे दुनिया की किसी भी दूसरी साधना से, दूसरी चीजों से संभव ही नहीं हैं।

(पृष्ठ २ का शेष)

कठिन कार्य है ! कितने धैर्यवान होते होंगे सद्गुरु !

अज्ञान के मूल को हटानेवाले, जन्म-मरण के कारणों को और पातकों को भस्मीभूत करनेवाले, ज्ञान और वैराग्य के अमृत को हमारे दिल में भरनेवाले सद्गुरु का सत्संग और सान्निध्य मिल जाय तो कितना अहोभाग्य ! ऐसे महापुरुषों की डाँट भी मिल जाय तो कितनी सुहावनी होगी ! वे डंडा लेकर पिटाई भी करने लग जायें तो कितने मधुर होंगे वे डंडे ! वे तमाचा मार दें तो भी उसमें कितनी करुणा छिपी होगी ! अपने गुरुदेव स्वामी विरजानंद के द्वारा पिटाई ऋषि दयानंद कितनी श्रद्धा-भक्ति से सहे... अधिकारी बन सके।

काश ! हम सद्गुरु की करुणा-कृपा को समझ सकें व उसे झेलने के अधिकारी बन सकें...

सपने जैसे संसार से आकर्षण हटाके जो सदा है, सर्वत्र है, अभी है, अपना आत्मा-परमात्मा हो बैठा है, उसकी ज्ञान-स्मृति में डट जायें, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति की परवाह न करें।

(पृष्ठ ३ का शेष)

बिन भूला एक गोरखा, जिसको गुरु का आधार ॥

संसार में मजा लेने जैसा कुछ नहीं है, गणपतिजी में हाथ डालने जैसा नहीं है। 'तुम मजे लो हमको नहीं लेना है। हम तो गुरु के द्वार जायेंगे। तुम आ हा हा करो... दारू पियो... 'वेलेंटाइन डे' मनाओ, खोखले हो जाओ, फिर पछताते रहो, जन्मों और मरो... लेकिन हमको पता चल गया है कि बाहर से आ...हा...हा... हो रहा है परंतु अंदर क्या है।'- ऐसी समझ है तब तो कहीं बचेंगे नहीं तो संसार की वासना तो तौबा करा देती है। ईश्वर की इच्छामात्र से शांति और सद्गुण आने लगते हैं। संसार की इच्छामात्र से अशांति और दुर्गुण आने लगते हैं।

रहना नहीं देश बिराना है।
यह संसार कागज की पुड़िया, बूँद पड़े गल जाना है।
यह संसार काँटों की बाड़ी, उलझ पुलझ मर जाना है॥
यह संसार झाड़ और झाँखर, आग लगे जल जाना है।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, सद्गुरु नाम ठिकाना है॥

सद्गुरु ने भगवन्नाम, भगवद्ज्ञान दिया उसमें विश्रांति पाओ, उसको पाना ही ठिकाना है बाकी तो उलझ-उलझकर मर जाना है।

रंग प्रसंग

रंगों का अद्भुत प्रभाव

सूर्य की किरणों में सात रंग हैं किंतु उनके हलके-भारी सम्मिश्रणों से प्रायः १० लाख रंग बन सकते हैं। इनमें से विभिन्न जीव-जंतु अपनी नेत्रक्षमता के अनुरूप ही रंग देख पाते हैं। मनुष्य की आँखें मात्र ३७८ रंग देखन में समर्थ हैं।

जैसे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न तत्त्वों की आवश्यकता है, ऐसे ही रंगों की भी आवश्यकता है। रंग विशेषज्ञों के अनुसार स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए शरीर में रंगों का संतुलन नितांत आवश्यक है, जिससे शरीर को विभिन्न कार्यों के संपादन के लिए भरपूर मात्रा में शक्ति मिलती रहे। प्रत्येक रंग का अपना विशेष महत्त्व है एवं रंगों में परिवर्तन के माध्यम से अनेक मनोविकार तथा शारीरिक रोगों का शमन संभव है।

सौर-चिकित्सा शास्त्र शरीर में रंगों की घट-बढ़ के कारण रोगों का होना मानता है। रंगों का शरीर की सप्तधातुओं और कार्यपद्धतियों पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

रंगों का प्रभाव :

पीला रंग : यह प्रभातकाल के उदीयमान सूर्य का रंग है। इससे उत्साह उभरता है, संयम सधता है और मनः क्षेत्र में सात्त्विकता का अनुपात बढ़ता है। यह जाग्रति और कर्मठता का प्रतीक है। पीले रंग का प्रेम-भावनाओं से संबंध है। उपासना-अनुष्ठानों में यह बौद्धिक क्षमताओं को विकसित करनेवाला, आरोग्यवर्धक तथा विद्यार्थियों के लिए विचारशक्ति, स्मरणशक्ति बढ़ाने में यह विशेष रूप से उपयोगी माना गया है। पीले रंग में संयम, आदर्श, पुण्य, परोपकार का बाहुल्य है। यह कृमिनाशक भी है। जिन घरों में कलह होती हैं वहाँ यदि पीला रंग पोत दिया जाय तो आशा की जाती है कि उपद्रव या मनोमालिन्य शांत हो जायेंगे। अपराधजन्य शिकायतों में, चंचलता, उद्विग्नता, तनाव, वासनात्मक आवेश में पीले रंग से लाभ होता है। गर्भिणी स्त्रियों को पीला रंग अधिक उपयोगी सिद्ध होता हैं।

नीला रंग : इस रंग से उदारता, सौन्दर्य और अंतर्मुखी जीवन की प्रेरणा मिलती हैं। विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण में नीले रंग का विशेष प्रभाव देखा गया है। नीले रंग के साथ स्नेह, सौजन्य, शांति, पवित्रता जैसी प्र[illegible]

हरा [illegible] रंग में ताजगी, प्रसन्नता, आनंद, स्फूर्ति एवं शीतलता का प्रभाव है। अधिक बौद्धिक श्रम करनेवाले और अस्वस्थ लोगों को हरे रंग का प्राकृतिक उपयोग करना चाहिए। जंगलों या पहाड़ों पर जाकर प्रकृति की हरियाली देखकर मन को बड़ी शांति, प्रसन्नता के साथ जीवन की थकावट दूर होती है। मानसिक शांति के लिए आमतौर से नीले या हरे रंग का प्रयोग किया जा सकता है।

श्वेत रंग : यह ज्ञान, मधुरता, गंभीरता एवं पवित्रता का बोधक है। सफेद में सादगी, सात्त्विकता, सरलता की क्षमता है। इसलिए कुँआरी कन्याओं और विधवा स्त्रियों में श्वेत वस्त्र धारण करने की भारतीय परम्परा है। श्वेत वस्त्र दूसरों के मन में द्वेष, दुर्भाव नहीं लाते।

लाल रंग : आक्रमकता, हिंसा, उग्रता, उत्तेजना, कामविकार, संघर्ष, स्फूर्ति और बहिर्मुखी जीवन का प्रतीक है। ज्यादातर लाल रंग के कपड़े पहननेवाले लोग गुस्सेबाज देखे जाते हैं। लाल बल्ब जलाना भी क्रोध बढ़ानेवाला है। इसलिए लाल कपड़े और लाल बल्ब से अपने को बचाइये।

केसरिया रंग : वीरता और बलिदान का प्रेरक है। इसीलिए ये दोनों रंग युद्ध में प्रयुक्त होते हैं।

गुलाबी रंग : गुलाबी रंग में आशाएँ, उमंगें और सृजन की मनोभूमि बनाने की विशेषता है। गुलाबी प्रकाश से पौधे अच्छी तरह उगते हैं, पक्षियों की संख्या में वृद्धि होती है, ज्वर, छोटी चेचक, कैंसर जैसी बीमारियों पर भी आशातीत लाभ होता है।

गेरुआ रंग : यह रंग पवित्र, सात्त्विक जीवन के प्रति श्रद्धा, प्रेम भाव जगाता है। इसलिए धार्मिक दृष्टि से इस रंग का महत्त्व हिन्दू धर्म ने स्वीकारा है।

चाकलेटी रंग : इसमें एकता, ईमानदारी, सज्जनता के गुण हैं।

काला रंग : तमोगुणी रंग है। इससे निराशा, शोक, दुःख एवं बोझिल मनोवृत्ति का परिचय मिलता है।

नारंगी रंग : जीवन में आत्म-विश्वास तथा साहस की जानकारी देता है। नारंगी रंग मनीषा चिह्न हैं।

(शेष पृष्ठ २७ पर)

मानव की प्राकृतिक माँग : होली

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

होली हुई तब जानिये,
पिचकारी गुरुज्ञान की लगे।
सब रंग कच्चे जायें उड़,
एक रंग पक्के में रँगे ॥

होली का उत्सव यह हमारी प्राकृतिक माँग है। हर्ष, उल्लास, आरोग्य हम चाहते हैं तो पर्वों, उत्सवों के द्वारा इस मानवीय माँग की पूर्ति होती है और अगर सत्संग व साधना मिल जाय तो दैविक माँग, प्रभुप्राप्ति की माँग की पूर्ति भी हो जाती है।

दुःख का रंग भी उड़ जाय, द्वेष का रंग भी उड़ जाय। मित्र से, पत्नी से, साथी से जिस किसीसे भी संघर्ष हो गया, सो हो गया। जो धन मिला सो मिला, जो गया सो गया। जो मान मिला सो मिला, जो अपमान हुआ सो हुआ। जो दुःख मिला सो मिला, जो सुख मिला सो मिला। सुख भी गुजर जाते हैं, दुःख भी गुजर जाते हैं, बीच के दिन भी गुजर जाते हैं। सब गुजर रहा है तो फिर काहे का आग्रह करना, काहे की चिंता करनी?

होली अर्थात् हो... ली... जो हो गया सो हो गया, उसे भूल जा। बड़ा आदमी अपने धन-दौलत का बड़प्पन भूल जाय और छोटा आदमी अपना छोटापना भूल जाय; बस! होली के रंग में, रंगरेज के रंग में रँग जाय।

साहेब मेरो रंगरेज चुनरी मोरि रँग डारि।
स्याही रंग छुड़ाय के दियो भक्ति को रंग।
धोये से छूटे नहीं दिन-दिन होत सुरंग ॥

आपके चित्त में भगवद्भक्तिमयी, भगवन्मयी होली हो जाय। इस उत्सव के दोनों पहलुओं को देखें, एक है ऐहिक (लौकिक) लाभ और दूसरा है आत्मिक लाभ। हर्ष-उल्लास मिलना लौकिक लाभ है और चिंता-वासना, राग-द्वेष भूलकर परमात्मा में शांत होना यह है पर्व का आध्यात्मिक लाभ। जितना आत्मिक गतिवाला संग होगा उतना आत्मिक लाभ होगा। जितना ऐहिक गतिवाला संग होगा उतना ऐहिक लाभ होगा।

पहले के जमाने में पलाश, गुलाब, रजनीगंधा आदि फूलों के रंग तथा मेंहदी आदि का मिश्रण करके खुशबूदार रंगों से, हर्ष-उल्लास से होली खेली जाती थी। जिससे **सुगंधिं पुष्टिवर्धनम्...** उस सात्त्विक सुगंध से ज्ञानतंतुओं में, नाड़ियों में सात्त्विक पुष्टि आती थी, सारे शरीर में पुष्टि आती थी और हमारे शरीर के सप्तरंगों में जो कमी होती उसकी पूर्ति का काम हो जाता था। इससे जीवन में चिड़चिड़िया होने का अथवा खिन्न होने का अवसर आने पर भी हम उतने चिड़चिड़े या खिन्न नहीं होते थे - यह ऐहिक लाभ है। आज बहुत-से लोग केमिकल के रंगों से होली खेलकर ऐहिक लाभ की जगह ऐहिक नुकसान ज्यादा कर लेते हैं, जिससे आँखों की हानि, पाचनशक्ति की हानि, प्रजनन-तंत्र की हानि, त्वचा की, कैंसर आदि की बीमारियाँ होती हैं।

होली आरोग्य के कण बढ़ाती है। जो लोग भारतीय पद्धति से होली खेलते हैं, उनका मन इतना खिन्न, इतना अशांत नहीं होता है जितना पाश्चात्य लोगों का होता है।

विदेश के लोग इस उत्सव का लाभ नहीं उठा पाते तो वहाँ के लोगों में भारत की अपेक्षा चिड़चिड़ापन, खिन्नता, तुरंत घबरा जाने की बीमारी बहुत ज्यादा है; उच्च रक्तचाप से ब्रेन हेमरेज व अनिद्रा की बीमारी ज्यादा है; आत्महत्या के केस ज्यादा हैं; उद्विग्नता और मानसिक अवसाद के केस ज्यादा हैं। इसमें उन बेचारों का दोष नहीं है। वे ऋषि-परंपरा से अपनी सप्तधातुओं को सप्तरंगों से संतुलित

मनुष्यमात्र इस पर्व का फायदा उठा सकता है। फिर चाहे ईसाई हो, पारसी हो, मुस्लिम हो, यहूदी हो, कोई भी हो।

नहीं रख पाते हैं।

हरेक रंग का अपना प्रभाव पड़ता है मन पर, विचारों पर । हमारे शरीर में सात रंग हैं, सप्तधातुएँ हैं । सप्तधातुओं में, सप्तरंगों में किसीकी कमी या अधिकता होने से रोग होता है।

जो रंगों के द्वारा चिकित्सा करते हैं उनको पता है कि लाल रंग से अमुक-अमुक रोग मिटते हैं, हरे रंग से अमुक-अमुक रोग मिटते हैं। केसरी रंग से अमुक-अमुक रोग मिटते हैं... जिस रंग की कमी है उस रंग की बोतल में पानी भरके सूर्य की किरणों में रखकर मरीजों को वह पानी दिया जाता है। जिस रंग की कमी से मर्ज हुआ है उस रंग की पूर्ति कर देने से वे मरीज ठीक हो जाते हैं। लेकिन भारतीय संस्कृति ने तो गजब कर दिया ! होली के उत्सव के निमित्त पलाश के फूलों के रंग से रँगने की व्यवस्था की ताकि गर्मी के दिनों में आपकी गर्मी पचाने की ताकत बढ़ जाय और आपके शरीर के सात रंगों में विक्षेप न हो । आपकी सप्तधातुओं में संतुलितता रहे, आपकी जीवनीशक्ति का विकास हो इसलिए केसुड़े (पलाश) के फूलों से होली खेली जाती है। इस तरह होली का हमारे स्वास्थ्य के साथ सीधा संबंध है।

यह लौकिक लाभ है, अब आध्यात्मिक लाभ देखें। भगवान ने पीतांबर क्यों पहना है ? कि मुझ पीतांबरधारी को देखनेवाले के शारीरिक रोग तो क्या मानसिक रोग भी घटने लगें । मेरा दर्शन करनेवाले की संकीर्ण मानसिकता, छोटी कामनाएँ, मन की चंचलता, नाखुशी छू हो जाय।

गगनसदृशं... भगवान नीलवर्ण हैं । व्यापक वस्तु गगनसदृश होती है । आकाश सचमुच में नीला नहीं है लेकिन व्यापक होने से नीलवर्ण भासित होता है। समुद्र नीला दिखेगा क्योंकि व्यापक और विशाल है । ऐसे ही परमात्मा की उपासना करनेवाले अपनी संकीर्ण मान्यताएँ, संकीर्ण चिंतन, संकीर्ण ख्वाहिशों को छोड़कर ॐ... ॐ... का रटन करें। पवित्र ओंकार का गुंजन करते हुए ॐ आनंद... ॐ आनंद... हरिॐ का उच्चारण करें। 'हरिॐ' - जो पाप-ताप हर ले और अपना आत्मबल भर दे।

मनुष्यमात्र इस पर्व का फायदा उठा सकता है। फिर चाहे ईसाई हो, पारसी हो, मुस्लिम हो, यहूदी हो, कोई भी हो। इन उत्सवों में १० नियमों का पालन जो भी करेगा उसको फायदा होगा, होगा, होगा।

'अग्नि पुराण' में आया है :

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
देवपूजाऽग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च ॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः ।
पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥

'क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्न्याधान (यज्ञाग्नि को स्थापित करना), संतोष और अस्तेय - इन दस धर्मों का सभी व्रतों में समान रूप से निर्वाह करना चाहिए। उस दिन पवित्र मंत्रों का जप और यथाशक्ति हवन करना चाहिए।'

(अग्नि पुराण : १७५.१०-११)

सारे व्रतों में, पर्वों में, उत्सवों में ये १० नियम अगर

आ गये तो उस व्रती के ओज, बल, प्राण, भाव और आध्यात्मिकता का विकास होगा। हो सके तो पंचगव्य का पान भी हितकारी है। आरोग्य, प्रसन्नता, बल, तेज, रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और जटिल रोगों को मिटाने में सहायक है। यह मेरा व मेरे लाखों-लाखों साधकों का अनुभव है। (पंचगव्य बनाने की विधि 'ऋषि प्रसाद' अंक : १३२ पृष्ठ : २७ में दी जा चुकी है।)

भारतीय संस्कृति में व्रत भी हैं, पर्व भी हैं, त्यौहार भी हैं। व्रत आदमी को उसकी सुषुप्त शक्तियों को जगाने के लिए दृढ़ता देते हैं। पर्व, त्यौहार उल्लास के साथ आत्मिक उन्नति देते हैं। उनसे आपकी जो लघुताग्रंथि, अहंग्रंथि है वह खुल जाती है। जीवन सहज होता है। नियम आदमी को पशुता से रोककर मानवता में लाते हैं और फिर सत्संग मिल जाय तो वह आदमी को मानवता से उठाकर ईश्वरत्व में जगा देता है।

जो लोग शास्त्रनियम के विरुद्ध जीते हैं वे अशांत हो जाते हैं, दुःखी हो जाते हैं, तनाव में रहते हैं। फिर उस तनाव को मिटाने के लिए गोलियाँ खाते हैं, इंजेक्शन लेते हैं, नशीले पदार्थ लेते हैं फिर भी तनाव नहीं मिटता तो घूमते-घामते, देर-सवेर संतों के पास आते हैं, तभी उनको संतोष होता है। यह कैसी उस कारीगर की कारीगरी है, उस कलाकार की कैसी कला है ! इस तरह मनुष्य सुविधाओं में असुविधा पाता है, सुखों में दुःख पाता है और दुःखों में सुख पाता है। आखिर प्रज्ञा जागती है कि 'आखिर कब तक ? सब छोड़कर मर जाना है।' - यह विवेक पाता है और विवेक के बल से सत्संग में आता है। सत्संग से, साधना के बल से अपने साध्यस्वरूप ईश्वर तक पहुँच जाता है। नियम, व्रत, पर्व, उत्सव, सत्संग - ये सभी मानवीय चेतना को पशुता से बचाकर ईश्वरत्व की तरफ लाने के लिए होते हैं।

...तो जीवनशक्ति का ह्रास करनेवाले रंगों से होली न खेलना, न दूसरों को प्रोत्साहित करना। जीवनशक्ति विकसित हो इसलिए भगवन्नाम लेते हुए, भगवद्भाव से, प्राकृतिक सुगंधित रंगों से होली खेलें तो आपका चित्त जो खिन्न हो जाता है उस खिन्नता से बचकर आप वर्षभर प्रसन्नता के प्रसाद से पूर्ण हो सकते हैं। होली का उत्सव यह हमारी प्राकृतिक माँग है। हर्ष, उल्लास, आरोग्य हम चाहते हैं तो पर्वों, उत्सवों के द्वारा इस मानवीय माँग की पूर्ति होती है और **अगर सत्संग व साधना मिल जाय तो दैविक माँग, प्रभुप्राप्ति की माँग की भी पूर्ति हो जाती है।**

सार्थक होली

छायी ऋतु बसंत बहार,
आया होली का त्यौहार।
रंग संग छलके आनंद रस,
पाया हरि गुरु का दीदार ॥
सात्त्विक राम नाम रस रंग,
परम स्नेह हो जगे उमंग।
झूमे चित्त चेतना बरसे हरिरस,
छा जाय निज आत्मखुमार ॥
ज्ञान भक्ति का अबीर गुलाल,
मिटें दोष, दुर्गुण, रंज, मलाल।
हो पावन उज्ज्वल उर आरस,
जीवन में आये निखार ॥
ब्रज में थी घनश्याम ने खेली,
गोप-गोपियों की संग टोली।
प्रभुप्रेम है अद्भुत पारस,
नित्य निरंजन है सुखसार ॥
'साक्षी' भस्म हुई होलिका,
प्रह्लाद का हुआ बाल न बाँका।
भक्तवत्सल हुआ प्रकट थंभ से,
प्रभु नृसिंह लेके अवतार ॥
'होली' है हो ली सो हो ली,
सत्य वचन की सुमधुर बोली।
भाईचारा स्नेह हो अरस परस,
हर दिल बसा वही दिलदार ॥
सार्थक होली सद्गुरु संग,
विवेक वैराग हो मनवा असंग।
घट घट में हो एक एहसास,
जीवन नैया हो भवपार ॥

- जानकी ए. चंदनानी।

दुःखों का कारण अपने ही दोष !

महात्मा विदुरजी कहते हैं :

ईर्ष्यी घृणी नसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ॥
(महाभारत, उद्योग पर्व, प्रजागर पर्व : ३३.९०)

'जो दूसरों की उन्नति या सुख देखकर ईर्ष्या करते हैं, सभीमें दोष देखकर उनसे घृणा करते हैं, किसी भी स्थिति में संतोष नहीं करते, जो क्रोधी स्वभाव के हैं, सदा शंकित रहते हैं तथा जो दूसरे के भाग्य पर जीवन-निर्वाह करते हैं - ये छः प्रकार के लोग सदा दुःखी रहते हैं।'

मनुष्य अपने ही दोषों से दुःखी होता है। अपने ही मन की दूषित दृष्टि दूसरों में दोषारोपण करके उन्हें दोषी देखती है। परिणाम में घृणा, द्वेष, दुर्गुण और बढ़ जाते हैं, जिससे अपने ही दुःख बढ़ते हैं क्योंकि जब हमारे मन में किसीके प्रति द्वेष, क्रोध उत्पन्न होते हैं, हम उसी समय से अंदर में जलने लगते हैं; वह व्यक्ति तो तब जलता है जब हमारे मन के इन दोषों की कोई प्रतिक्रिया बाहर प्रकट होती है।

अपना स्वभाव बदलें और उसे दिव्य बनायें। अपना स्वभाव मरने के बाद भी साथ में चलता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : स्वभावविजयः शौर्यं... अपने स्वभाव पर विजय प्राप्त करना ही 'शूरता' है।

अपने मन का गहराई से निरीक्षण कीजिये। अवश्य ही आपको ये दोष दिखायी देंगे। आप दूसरों के बुरे बर्ताव के इलाज करने की चिंता छोड़कर पहले अपने इन मानस रोगों को दूर भगाने का प्रयत्न करें। जब आपके ये रोग नष्ट हो जायेंगे, तब आपको उन लोगों के दुर्व्यवहार में स्वयं ही कमी प्रतीत होने लगेगी क्योंकि इससे आपकी दृष्टि यथार्थ हो जायेगी। फिर जो जैसा है ठीक वैसा ही आपको दिखायी देगा। इसलिए स्वाभाविक ही उनके दोष कम दिखेंगे और उनके रहे-सहे दोष आपके सद्व्यवहार से दूर हो जायेंगे।

दूसरे के दुर्व्यवहार को नष्ट करने का उपाय बदले में सद्व्यवहार करना है, दुर्व्यवहार करना नहीं। दूसरे में तो दोष हैं ही, तभी वह दुर्व्यवहार करता है। यदि हम भी बदले में दुर्व्यवहार करेंगे तो हममें भी वे दोष आ जायेंगे। इससे हमारी ही हानि होगी। हम अपने दुर्व्यवहार को दोष नहीं समझते तो फिर दूसरे के दुर्व्यवहार को दोष समझने का हमें क्या अधिकार है ?

आप दूसरे में दोष समझते हैं तभी उसे दूर करना चाहते हैं लेकिन दूसरे के दोष दूर करने के नाम पर स्वयं उस दोष को ग्रहण कर लें - यह कहाँ की बुद्धिमानी है ? इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह पहले अपने दोषों को बारीकी से देखे, उन्हें दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करे। इसीमें उसका और सबका कल्याण है। अपना स्वभाव बदलें और उसे दिव्य बनायें। अपना स्वभाव मरने के बाद भी साथ में चलता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा :

स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥
(श्रीमद्भागवत : ११.१९.३७)

अपने स्वभाव पर विजय प्राप्त करना ही 'शूरता' है। सर्वत्र समस्वरूप, सत्यस्वरूप परमात्मा का दर्शन ही 'सत्य' है। आत्मस्वभाव को जाग्रत करें, ब्रह्मस्वभाव को जाग्रत करें। हलके स्वभाव पर विजय पायें।

* वासना हमें जड़ता से एक करती है।
* धर्म और उपासना हमारी वासना को नियंत्रित करने के लिए हैं।
* अपनी नजर से जो चीज बुरी है; उससे आप बचिये।
* दूसरे की नजर से अपने को तौलना संसार है।
* अपनी नजर में अपने को कभी भी हीनता की ओर नहीं जाने देना - यही साधना है।
* किसीके जीवन की त्रुटि देखकर यह समझ लेना कि यह पतित हो गया, बिल्कुल गलत धारणा है।
* किसीका तिरस्कार न हो, अपनी नजर से हम गिरें नहीं और भगवान से कड़ी जुड़ी रहे - इसके लिए भगवन्नाम का उच्चारण करते रहिये।

धर्म का साक्षात् विग्रह : श्रीरामजी

एक-दूसरे के प्रति अपना कर्तव्य कैसे निर्वाह करना चाहिए, एक-दूसरे के प्रति कैसा स्नेह, कैसी सहानुभूति होनी चाहिए - इसकी मंगलमय प्रेरणा देनेवाला अवतार है रामावतार।
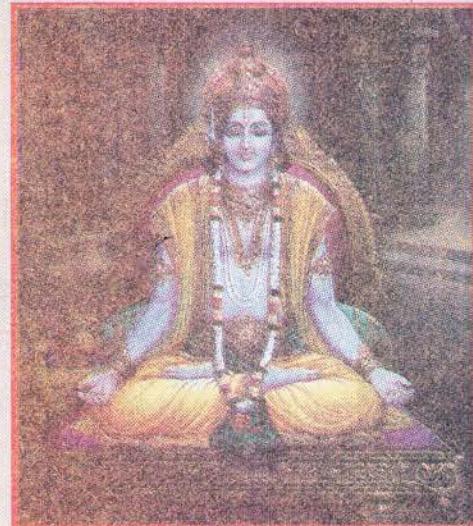
(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।

मोह माने क्या ? उलटा ज्ञान - जो हम नहीं हैं उसको हम मैं मानते हैं और जो हम हैं उसका पता नहीं।

रावण क्या है ? मोह का स्वरूप है और विष्णु क्या हैं ? जो सबमें बस रहे हैं और सबका हित चाहनेवाले, अकारण दया, करुणा-वरुणा बरसानेवाले हैं, वे हैं भगवान नारायण, भगवान विष्णु; जो कि सृष्टिकर्ता, भर्ता, भोक्ता हैं।

अकारण दया बरसानेवाले, दीनदयालु होते हुए भी उनको सृष्टि करनी है। अब सब पर दया करते रहेंगे तो सृष्टि कैसे चलेगी ? इसीलिए एक संविधान बनाया कि जो उनकी दया की आकांक्षा करते हैं, उनकी प्रार्थना-पूजा करते हैं उनको तो वे अंतर्प्रेरणा दें अथवा बाहर से अवतरित होकर उनकी मदद करें और बाकी जो अपने मोह, अहंकार, काम-क्रोध से भिड़ते हैं, वे भिड़ते-भिड़ते थक जाते हैं। फिर दूसरी-तीसरी योनियों में आते-आते देर-सवेर उनको समझ आती है कि अंतरात्मा में, आत्मा-परमात्मा में गोता मारे बिना सुख नहीं मिलता।

लोग बोलते हैं कि वस्तुओं के आश्रय बिना सुख नहीं मिलता परंतु सच्चाई तो यह है कि परमात्मा के आश्रय बिना सुख नहीं मिलता। रात को सब कुछ छोड़कर एक परमात्म-आश्रय में जीव डूब जाता है तो नींद का सुख मिलता है। परमात्मा और आपके बीच अज्ञान होता है किंतु सत्संग, दीक्षा-शिक्षा और जप के द्वारा अज्ञान ज्यों-ज्यों क्षीण होता जायेगा, त्यों-त्यों परमात्म-प्रेरणा जीवन में प्रकट होती जायेगी, परमात्म-प्राप्ति निकट हो जायेगी।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जन्तवः। (गीता : ५.१५)

अज्ञान से ज्ञान आवृत्त हो गया है।

देवताओं ने अंतर्यामी, सबके हृदय में बसनेवाले करुणा-वरुणालय भगवान नारायण से प्रार्थना की : ''प्रभु ! रावण और राक्षस बड़ा दुःख दे रहे हैं। उन्होंने बड़ा तहलका मचा दिया है, बड़ा क्षोभ पैदा कर दिया है।''

भगवान नारायण ने देवताओं को कहा : ''कोई बात नहीं, तुम लोग निश्चिंत हो जाओ। रावण आदि का वध मैं करूँगा।'' फिर वही देवाधिदेव परमेश्वर सत्ता दशरथनंदन होकर रामजी

के रूप में आयी - ऐसा वर्णन आता है।

'वाल्मीकि रामायण' में श्रीरामजी को भगवान के रूप में नहीं बल्कि नर रूप में दर्शाया गया है, क्योंकि श्रीरामजी नर तन में थे और नर-मर्यादा में जी रहे थे। सीताजी को रावण ले गया तो 'हाय सीते ! सीते-सीते !!...' कहकर रुदन करने लगे। परात्पर भगवान नारायण एक स्त्री के लिए क्यों रोयेंगे ?

रामचंद्रजी नरलीला कर रहे थे। नारायण के अवतार हैं, भले कैसे भी हों, लेकिन नर रूप में एक-दूसरे के प्रति अपना कर्तव्य कैसे निर्वाह करना चाहिए, एक-दूसरे के प्रति कैसा स्नेह, कैसी सहानुभूति होनी चाहिए - इसकी मंगलमय प्रेरणा देनेवाला अवतार है। भगवान श्रीरामजी का जीवन धर्म का साक्षात् विग्रह है।

भगवान राम का श्रीविग्रह तो अभी नहीं है परंतु उनके आचरण, उनके गुणगान और उनकी तन्मात्राएँ अभी भी विश्व में व्याप रही हैं। लोगों में सज्जनता, स्नेह, धर्मपालन तथा दुःखियों के प्रति आर्तभाव, दयालुता और सुखियों के प्रति प्रसन्नता - इस प्रकार के श्रीरामजी की तन्मात्राओं के सद्गुण अभी भी फैले हुए हैं।

आप सब भगवान राम की नाईं धनुष धारण नहीं कर सकते लेकिन रामजी के गुण तो अपने हृदय में धारण कर सकते हो।

'श्रीरामनवमी' के दिन भगवान राम की स्मृति, भगवान राम के नाम का जप बड़ा पुण्यदायी है और भगवान राम की कार्यकुशलता, अहा ! ... रामजी करने योग्य कार्यों को तत्परता से करते और जो नहीं करना है उसको मन से हटा देते, व्यर्थ का चिंतन नहीं करते थे, सारगर्भित बोलते थे। दूसरे को मान देते व आप अमानी हो के उसका मंगल हो ऐसा बोलते थे। किसीका भी अमंगल नहीं चाहते थे।

आप भी अपने नाते-रिश्तेदार का, किसीका भी अमंगल न चाहो तो आपका हृदय भी मंगलभवन, अमंगलहारी होने लगेगा। यह आप कर सकते हो। आप भगवान राम की नाईं धनुष धारण नहीं कर सकते लेकिन रामजी के गुण तो अपने हृदय में धारण कर सकते हो।

रामजी हीन शरणागति नहीं लेते थे। कैकेयी ने हीन शरणागति ली तो कितनी बदनाम और दुःख पैदा करनेवाली हुई। भगवान राम छोटे आदमी की बातों में, खुशामदखोरों की बातों में नहीं आते थे। उन लोगों को यथायोग्य प्रसन्न कर देते पर उनकी बातों में नहीं आते थे। अपने विवेक से निर्णय करते, रोम-रोम में रमे हुए राम में समाधिस्थ होते, शांतात्मा होते और कभी-कभी गुरु वसिष्ठजी का मार्गदर्शन लेते थे।

दशरथनंदन श्रीराम बड़ों का आदर करते, अपने जैसों से स्नेह से व्यवहार करते और छोटों से दयापूर्ण व्यवहार करते। कोई सौ-सौ गलतियाँ कर लेता किंतु रामजी उसके लिए मन में गाँठ नहीं बाँधते और कोई उनकी भलाई या सहयोग करता तो उसका उपकार नहीं भूलते थे - ऐसे थे मर्यादा पुरुषोत्तम रामजी। रात्रि को सोते समय तथा प्रातःकाल उठकर बिस्तर पर ही आत्मशांति का सुमिरन करते थे, 'सुख-दुःख देनेवाली परिस्थितियाँ, व्यवहार बदलनेवाला है पर मेरा आत्मा एकरस, अबदल है। मैं उसीके ध्यान में पुष्ट हो रहा हूँ।' आप यह कर सकते हैं।

आप रात्रि को शयनखंड में जाने पर और सुबह उठते समय ऐसा चिंतन करेंगे तो आपके जीवन में रोज रामनवमी होने लगेगी अर्थात् आपके हृदय में रामजी का प्राकट्य होने लगेगा।

रामतत्त्व में विश्रांति पा लो

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥

अर्थात् जिस नित्यानंदस्वरूप, अनंत चिन्मात्र परमात्मा में योगी लोग रमण करते हैं वह परब्रह्म सत्ता श्रीराम है। **(श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् : १.६)**

रोम-रोम में जो चेतना व्याप रही है, रोम-रोम में जो चैतन्य तत्त्व रम रहा है, जो तुम्हारे मन को देख रहा है वह साक्षी, चैतन्य राम तुम्हारा आत्मा है। वही सच्चिदानंद परमात्मा राम है। विषय-विकारों से बचकर उस आत्मा में स्थिति करो। इधर-उधर भटकते हुए मन को बार-बार रामतत्त्व में लाओ।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं :

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा।
जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा ॥

वही शरीर पावन एवं सुंदर है, जो भगवान श्रीराम के निरंतर भजन-चिंतन में लगा है।

जो राम-नाम लेता है वह अपने लिए बड़ा भारी खजाना जमा करता जाता है। यह ऐसा खजाना है जो कभी खूटता ही नहीं।

(शेष पृष्ठ १५ पर)

(संत तुकाराम महाराज जयंती : १७ मार्च)

मनुष्य अपने परिवार की सुख-सुविधा के लिए रात-दिन काम में लगा रहता है, फिर भी परिवार को तृप्ति नहीं होती और परमात्मा का दर्शन भी दुर्लभ हो जाता है। इस तरह का जीवन जीना तो अपना ही घात करना है और यह परमात्मा के प्रति बहुत बड़ा अपराध है।

संत श्री तुकाराम महाराज

'संत श्री तुकाराम महाराज की अभंगगाथा' से

शरीरा सुख नेदावा भोग।
न द्यावें दुःख न करीं त्याग।
नव्हे वोखटें ना चांग।
तुका म्हणे वेग करीं हरिभजनीं ॥

क्षणिक सुख के लिए शरीर को विषय-भोगों में न लगायें और न ही सब कुछ त्यागकर इसे पीड़ित करें। यह शरीर न बुरा है, न अच्छा। (इसलिए न इसमें आसक्त हों, न इसका त्याग करें।) तुकाराम महाराज कहते हैं कि अब तू इसे शीघ्र ही हरिभजन में लगा दे।

सांसारिक चीज-वस्तुओं और संबंधों की नश्वरता-क्षणभंगुरता का अनुभव कर वे कहते हैं :

नव्हे आराणूक संसारा हातीं।
सर्वकाळ चित्तीं हाचि धंदा ॥
देवधर्म सांदीं पडिले सकळ।
विषयीं गोंधळ गाजतसे ॥
रात्रंदिवस न पुरे कुटुंबीं समाधान।
दुर्लभ दर्शन ईश्वराचें ॥
तुका म्हणे आत्महत्यारे घातकी।
थोर होते चुकी नारायणीं ॥

संसार में कभी शांति नहीं मिलती, मन सदा सांसारिक धंधों में ही फँसा रहता है। परमात्मा और धर्म की सब बातें किसी कोने में पड़ी रह जाती हैं। विषय मनुष्य को उलझाये रखते हैं। वह अपने परिवार की सुख-सुविधा के लिए रात-दिन काम में लगा रहता है, फिर भी परिवार को तृप्ति नहीं होती और परमात्मा का दर्शन भी दुर्लभ हो जाता है। इस तरह का जीवन जीना तो अपना ही घात करना है और यह परमात्मा के प्रति बहुत बड़ा अपराध है।

शरीरसंपत्ति मृगजळभान।
जाईल नासोन खरें नव्हे ॥
तुका म्हणे आतां उपाधीच्या नांवें।
आणियेला देवें वीट मज ॥
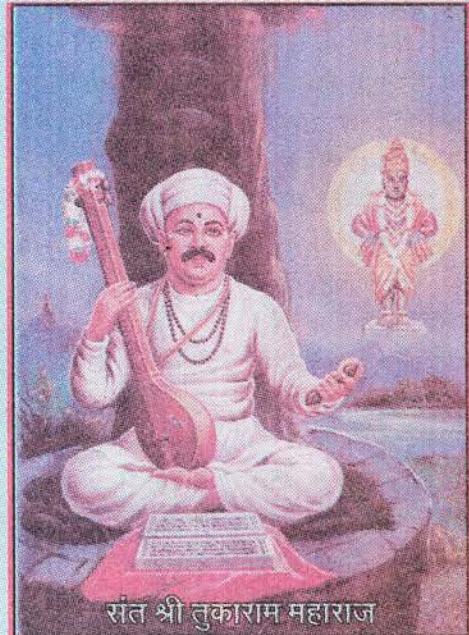
शरीर की सम्पत्ति (स्वास्थ्य और सुख) मृगमरीचिका के समान है, सच्ची नहीं। यह नष्ट होनेवाला है। तुकाराम महाराज कहते हैं कि भगवान ने अब मुझमें वैराग्य उत्पन्न कर दिया है।

भयंकर अकाल पड़ने पर संत तुकारामजी की पत्नी रुक्माबाई और पुत्र संतु काल के ग्रास हो गये थे। उसके तुरंत बाद उनके माता-पिता भी चल बसे। उस विपत्ति को भी परमात्मा की कृपा मानते हुए वे कहते हैं :

बाईल मेली मुक्त जाली। देवें माया सोडविली ॥
विठो तुझें राज्य। नाहीं दुसऱ्याचें काज ॥
पोर मेलें बरें जालें। देवें मायाविरहित केलें ॥
माता मेली मज देखतां। तुका म्हणे हरली चिंता ॥

मेरी पत्नी मर गयी। अच्छा हुआ, वह संसार के दुःखों से मुक्त हो गयी और मुझे परमात्मा ने माया से छुड़ा लिया। हे प्रभु ! अब तेरा और मेरा राज है। इसमें किसी और का कोई काम नहीं अर्थात् अब हम दोनों के प्रेम में बाधा डालनेवाला कोई नहीं रहा। बेटा मर गया, अच्छा हुआ। परमात्मा ने मुझे माया से अलग कर दिया। मेरे देखते-देखते माँ भी चल बसी। तुकारामजी कहते हैं कि प्रभु ने मेरी चिंता हर ली।

धन्य है तुकारामजी का नजरिया ! लोग मोह-ममता में माता-पिता के लिए, बच्चों के लिए रोते हैं लेकिन संत

मृतक के पीछे रो-रोकर मत मरो। मोह को छोड़ो, ईश्वर से प्रीति जोड़ो। जिससे तुम्हारी भी सद्गति हो और मृतात्मा की भी।

तुकारामजी माता, पिता, पत्नी, पुत्र की मृत्यु होने पर रोते नहीं बल्कि उसमें भी छुपे रूप में विट्ठल की कृपा मानते हैं। यह सच्चा प्रेम है।

मृतक के पीछे रो-रोकर मत मरो। मोह को छोड़ो, ईश्वर से प्रीति जोड़ो। जिससे तुम्हारी भी सद्गति हो और मृतात्मा की भी सद्गति हो।

धरती पर किसके खानदान में मृत्यु नहीं हुई ? मोही रोकर मृतात्मा को भी दुःखी बनाते हैं और खुद भी दुःखी होते हैं। भक्त भगवान की कृपा मानकर खुद भी तरते हैं और मृतात्मा को भी तरने में सहायता करते हैं। वे वास्तव में अपने और मृतक के परम हितैषी हैं।

'श्रीमद्भगवद्गीता' के सातवें अध्याय का माहात्म्य पढ़कर पाठ करो और उसका पुण्य मृतात्मा की सद्गति के लिए अर्पण करो। 'गरुड़ पुराण' का पठन-श्रवण करो तो इससे विशेष लाभ होगा। मृतकों के प्रति मोह जगे तो उनकी सद्गति के लिए आश्रम से प्रकाशित पुस्तिका 'मंगलमय जीवन-मृत्यु' पढ़ो और उनको मदद करने की, उनकी सद्गति की प्रेरणा पाओ।

(पृष्ठ १३ का शेष) राम-नाम संपूर्ण उपद्रवों, आध्यात्मिक, आधि- दैविक एवं आधिभौतिक व्याधियों को मिटाकर सब प्रकार से कल्याण करनेवाला है।

राम-नाम कितना पवित्र है, कैसा पावन है, उसमें कितनी शांति है, कैसी शक्ति है और उससे क्या हो सकता है ? - इन सबका वर्णन वाणी से नहीं हो सकता। अथाह की थाह कौन ले ?

मन पवित्र है तो भी 'राम-राम' जपो और मन पवित्र नहीं है तब भी 'राम-राम' जपो। जैसे जिह्वा में सूखा रोग हो जाता है तो मिश्री फीकी लगती है किंतु उस रोग को मिटाने का उपाय भी यही है कि मिश्री चूसते जाओ तो जिह्वा का सूखा रोग मिटता जायेगा और मिश्री की मिठास भी आने लगेगी। ऐसे ही हृदय सूखा है तो भी राम-नाम लो, जिससे सूखापन मिटते ही राम-नाम के रस का अनुभव हो जायेगा। फिर तो रामरस में इतने रसमय हो जाओगे कि बस ! बाहर के विषय-विकारों का रस फीका लगने लगेगा।

कबीरजी, नानकजी, एकनाथजी, ज्ञानेश्वरजी, लीलाशाहजी आदि कई महापुरुष हो गये, जिन्होंने अपने अंतर्यामी राम का आश्रय लिया और उस रामतत्त्व में टिक गये।

'श्रीरामनवमी' के पावन पर्व पर यही पुनीत संदेश है कि आप भी **'अव्यक्तं च परब्रह्म सच्चिदानंद विद्यते सदा राम'** जो सत्-चित्-आनंद स्वरूप, अव्यक्त, परब्रह्म, निरंतर रमणशील सत्ता है, उस रामतत्त्व में विश्रांति पा लो, जो अनंत कोटि ब्रह्मांडों का अधिष्ठान है और जो अपना आपा बनकर सदा आपके साथ है।

शिष्य कैसा होना चाहिए ?

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक दिन समर्थ रामदास ने शिष्यों की परीक्षा लेने के लिए अपने बाल खोल दिये, माथे पर बहुत सारा कुमकुम डाल दिया, आँखों में खूब काजल लगा लिया और हाथ में तलवार ले ली तथा ''हटो-हटो, मैं ब्रह्मपिशाच हूँ।'' कहते हुए चलने लगे। यह देख जो लल्लू-पंजू शिष्य थे, वे डरकर भागने लगे किंतु कल्याण ने सोचा कि 'मेरे ब्रह्मज्ञानी गुरु और ब्रह्मपिशाच ! मैंने तो सर झुका दिया है, अब वे ब्रह्मपिशाच के रूप में दिखें कि किसी भी रूप में दिखें, हैं मेरे गुरु।'

कल्याण नजदीक आने लगा। तब समर्थ ने बड़ी-बड़ी आँखें दिखाते हुए कहा : ''मारूँगा...!''

कल्याण डरे नहीं, जा के चरणों में पड़ गये। समर्थ ने तलवार फेंक दी और कल्याण को गले लगा लिया कि ''अब तू कल्याणस्वरूप हुआ। मुझे ऐसा निर्भय शिष्य चाहिए।''

शिष्य पाहिजे धारिष्ठाचा। शिष्य पाहिजे दृढ व्रताचा।

'शिष्य को धैर्यवान और दृढ़व्रती होना चाहिए।'

आप अपने मन को शिष्य बनाइये, अपने विचारों को दृढ़ बनाइये। ईश्वर के रास्ते जाने में थोड़ी-बहुत रुकावट या घबराहट की बातें आयें तो उनको हटा दीजिये और ईश्वर की ओर प्रीतिपूर्वक आगे बढ़िये। ईश्वर का, गुरु का रूप क्रूर या भयंकर भले दिखता हो, पर वह दिखनेभर को ही है। अंदर तो गुरु को खूब प्रेम है। भक्त का उद्धार करने के लिए ही भगवान की, गुरु की यह लीला है।

संत महिमा

हम वासी उस देश के...
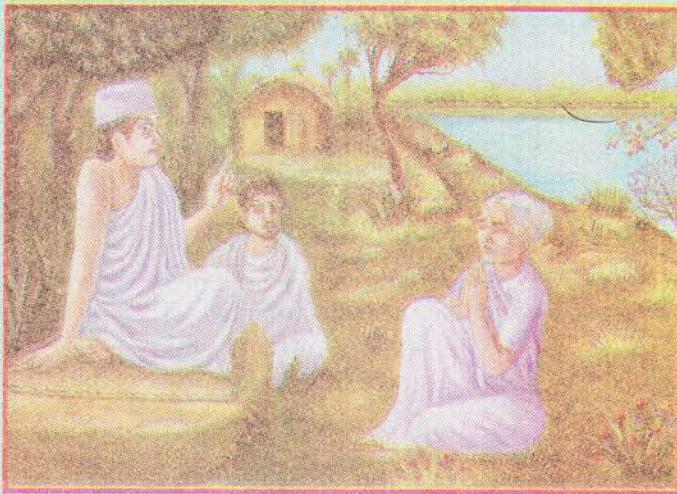
(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

दादू दीनदयालजी के पास एक युवान ने आकर कहा : ''महाराज ! मैंने काशी में आपकी खूब प्रशंसा सुनी । आप ज्ञातज्ञेय हो गये हो । मुझ पर कृपा करो । आप तो रँग गये, अब मुझे भी रँग दीजिये ।''

दादूजी ने पूछा : ''तेरा नाम क्या है ? कहाँ से आया है ? तेरा नगर कहाँ है ? माँ-बाप हैं ? कहाँ रहते हैं ? तू शादीशुदा है कि कुँआरा है ?''

लड़का बोला : ''महाराज ! क्षमा कीजिये, इन सब बातों को पूछने में आपके कितने श्वास खत्म हो गये और मैं इनके उत्तर बताऊँगा तो मेरे भी कितने श्वास खत्म हो जायेंगे । महाराज ! इन श्वासों में पता नहीं कौन-सा श्वास आखिरी हो । इसलिए जितनी देर इन नश्वर बातों को पूछें और विचारें, उतनी देर आप कृपा करके सत्संग की दो बातें सुना दीजिये । महाराज ! मुझे रँग दीजिये, रँग दीजिये ना प्रभु !'' वह युवान सच्चे हृदय से दादूजी के चरणों में गिर पड़ा । दादूजी युवक की भगवत्प्राप्ति की तीव्र तड़प देखकर प्रसन्न हुए और बोले : ''अच्छा, तो बैठ ।'' उन्होंने उस पर निगाहें डालीं और ध्यान करता-करता वह लड़का शांत हो गया । उसके चित्त के संकल्प-विकल्प कम हो गये । उसको कुछ अंतर का आराम, अंतर का सुख, अंतर का आनंद प्राप्त हुआ ।

''महाराज ! इन श्वासों में पता नहीं कौन-सा श्वास आखिरी हो । इसलिए जितनी देर इन नश्वर बातों को पूछें और विचारें, उतनी देर आप कृपा करके सत्संग की दो बातें सुना दीजिये ।''

तभी सेवक ने बताया : ''इस लड़के की माँ बड़ी रुष्ट होकर आ रही है ।''

लड़का बोला : ''महाराज ! मेरी माँ मुझे पकड़कर ले जायेगी । इसकी भगवान से प्रीति नहीं है, भगवान से वैर है । दिन-रात मुझे टोकती है ।''

महाराज ने कहा : ''तू चिंता मत कर । ध्यान में बैठ जा ।''

''महाराज ! यह तो आपको भी मार-पीट सकती है, ऐसी है ।''

''वह मुझ तक पहुँचेगी ही नहीं और तू भी ऐसी जगह जा कि वह तेरे तक भी नहीं पहुँचे । डूब जा-डूब जा । माँ शरीर की है तेरी नहीं है । गाली देती है या कुछ शब्द उच्चारण करके अपमान करती है तो शब्द आकाश में चले जाते हैं । 'मुझे लगते हैं' - ऐसा मत सोच बल्कि सोच कि 'हे परमेश्वर ! मैं तेरा हूँ, तू मेरा है । हरि ॐ तत् सत् और सब गप-शप ।' भूतकाल भूल जा, भविष्य

जो भरा नहीं है भावों से, जिसमें बहती रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें संतों के लिए प्यार नहीं ॥

की कल्पना मत कर एवं वर्तमान में आसक्त मत हो। वर्तमान में, अपने चैतन्यस्वरूप ईश्वर में डुबकी मार। चुप बैठ जा, हो जा अंतर्मुख, डूब जा गहरा। ऐसी जगह पहुँच जा जहाँ तेरी माँ न पहुँचे और मैं भी वहाँ चला जाता हूँ। वह बाहर ही खड़ी रह जायेगी।''

सिद्धपुरुष के वचन आशीर्वाद हो जाते हैं, दुआ हो जाती है। दुआ पर कोई 'लेबल' लगा हुआ थोड़े ही होता है। उनका बोलना भी तो दुआ है, उनका मुस्कराना भी दुआ है, उनका देखना भी दुआ है और उनका डाँटना भी तो दुआ का दूसरा रूप है।

दादूजी और वह लड़का दोनों ध्यानस्थ हो गये। दादूजी की कृपा से लड़के का चित्त अपने चैतन्यस्वरूप में, समत्वयोग में विश्रांति पा रहा था। माई आयी, लड़के को देख सोचने लगी कि 'हरामजादा ! कमाने के भय से इधर आकर बाबा बनकर बैठा है।' फिर माई ने दादूजी को देखा तो उसे लगा कि इसको बिगाड़नेवाला यही है। बोली : ''हे निपूते ! कुछ वर्ष पहले मेरा पति चला गया। विधवा माई के इकलौते बेटे को बिगाड़नेवाले ! तेरा सर्वनाश हो। आँखें बंद करके बैठा है, मुआ ! कुछ तो समझ। मेरे बेटे को घर लौट आने का उपदेश दे दे। आँखें बंद कराके बिठा दिया। मुझे देखकर कुछ बड़बड़ा के फिर दोनों आँखें मूँद के बड़े भगतड़े हो गये। बगभगत ! बगुले की नाईं आँखें मूँदकर बैठ गये।''

> "जहाँ लगा था, मैं वहाँ नहीं था। जिसको तू सुना रही थी, वह मैं नहीं था। मैं तो पाँचवीं कोठरी में बैठा था और तू पहली कोठरी को बोल रही थी।"

माई अनाप-शनाप बोलती रही लेकिन हर चीज का अंत होता है। गुस्से का भी अंत होता है, गालियों का भी अंत होता है। माई के पास जो कुछ गालियों का शब्दकोश था, वह पूरा खत्म कर चुकी; जितनी गुस्सा करने की क्षमता थी, वह कर चुकी। आखिर वह ऊब गयी कि 'इतनी-इतनी गालियाँ सुना रही हूँ, मुआ फिर भी आँखें बंद करके बैठा है, शर्म नहीं आती। निपूते को कोई असर नहीं होता। तेरा सर्वनाश हो।' - ऐसा कहकर माई ने जोर-से थप्पड़ मारा दादूजी के सिर पर।

ज्यों माई ने मारा, त्यों संत के सिर के स्पर्श से कहो, संकल्प से कहो उस माई का क्रोध शांति में बदल गया; पाप-ताप व अशांति पुण्य और समझ में बदल गयी। माई दूसरे ही क्षण फूट-फूटकर रोने लगी। ''अरे, मैं अभागिन ! पापिन !! आप भजूँ नहीं और दूसरे को भी भजने न दूँ। तुमको इतनी गालियाँ दे रही हूँ, तुम कुछ बोलते नहीं। महाराज ! तुम तो भगवान हो। मैं कौन-से नरक में पड़ूँगी ? मुझे माफ कर देना।'' - ऐसा करके वह माई खूब रोयी।

अपने दोषों का चिंतन करके ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के आगे कोई प्रायश्चित्त करता है तो उसके दोष जल्दी जल जाते हैं। उनके आगे अगर थोड़ा भी प्रायश्चित्त किया जाता है, थोड़ा भी सुमिरन किया जाता है या उनकी थोड़ी भी सेवा की जाती है तो उसका अनंत फल होता है और थोड़ी भी बेईमानी या थोड़ा भी कुकर्म किया जाता है तो वह भी फिर वैसा ही रंग दिखा देता है। माई ने प्रायश्चित्त किया। उसका हृदय पावन हुआ। दादूजी तो संतत्व को पाये हुए थे, आँखें खोलकर माई पर कृपादृष्टि डाली। फिर मधुर वाणी में बोले : ''क्या है माताजी ?''

''बाबाजी ! मैं अभागिन, पापिन आपको इतना-इतना बोली और आप सुनते ही रहे ! आपने मुझे एक भी जवाब नहीं दिया। आपने श्राप भी नहीं दिया महाराज ! इतनी-इतनी मेरी गालियाँ आपने सुनी नहीं क्या और मैंने आपके सिर पर मारा था, वह आपको लगा नहीं क्या ?''

दादूजी बोले : ''जहाँ लगा था, मैं वहाँ नहीं था। जिसको तू सुना रही थी, वह मैं नहीं था। मैं तो पाँचवीं कोठरी में बैठा था और तू पहली कोठरी को बोल रही थी। तेरे बेटे को भी मैंने चौथी-पाँचवीं कोठरी में बिठा दिया था।

यह जो शरीर दिखता है यह पहली कोठरी है - अन्नमय कोश है। इसके अंदर दूसरा प्राणमय कोश है। उसके अंदर मनोमय कोश है, उसके अंदर विज्ञानमय कोश है और उसके अंदर आनंदमय कोश है। इन पाँच कोठरियों के पार जहाँ योगी पहुँचता है, मैं वहाँ बैठा था।

जैसे किसी आदमी ने बनियान पहनी हो, फिर कमीज पहनी हो, उसके ऊपर लम्बा कुर्ता पहना हो,

फिर स्वेटर पहना हो तथा बरसात के दिन हों तो बरसाती कोट भी पहना हो तो हवा-पानी का असर बरसाती कोट को ऊपर से होगा, अंदर के चार तो ज्यों-के-त्यों रहेंगे। ऐसे ही इस शरीर को तू मारे-पीटे तो हो सकता है कि इस शरीर को, पहली कोठरी को थोड़ी चोट लग जाय लेकिन हम तो...

हम वासी उस देश के,
जहाँ पारब्रह्म का खेल।
दीया जले अगम का,
बिन बाती बिन तेल ॥

बिना तेल के, बिना बाती के वहाँ दीया जलता है और प्रकाश होता है । सदा प्रकाशमय अपना चैतन्यस्वरूप है। जो सुख को भी देख रहा है, दुःख को भी देख रहा है; मन चंचल है उसको भी देख रहा है और मन शांत है उसको भी देख रहा है; भूतकाल को भी देख रहा है, भविष्य की कल्पनाओं को भी देख रहा है तथा वर्तमान की भी सब परिस्थितियों को देख रहा है। वह जाग्रत को भी देख रहा है, स्वप्न को भी देख रहा है, सुषुप्ति को भी देख रहा है।

अपने दोषों का चिंतन करके ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के आगे कोई प्रायश्चित्त करता है तो उसके दोष जल्दी जल जाते हैं।

चांदणा कुल जहान का तू,
तेरे आसरे होय व्यवहार सारा।
तू सब दी आँख में चमकदा है,
हाय चांदणा तुझे सूझता अँधियारा ॥
जागना सोना नित ख्वाब तीनों,
होवे तेरे आगे कई बारा।
बुल्लाशाह प्रकाश स्वरूप है,
इक तेरा घट वध न होवे यारा ॥

जैसे चन्द्रमा की रोशनी में चाहे कितनी भी प्रवृत्तियाँ हों पर चन्द्रमा पर हमारे क्रियाकलापों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे ही तुम्हारा मन, तुम्हारा तन, तुम्हारे ये पाँच कोश चाहे कितनी बार बदलें, इन पाँच कोशों से जो न्यारा तत्त्व है वहाँ जब हम ठहरे हैं तो हमारा क्या बिगड़ सकता है, देवी !''

''महाराज ! मैं तो डाकिनी हूँ, देवी नहीं हूँ। मैं तो छोरे को रोकनेवाली और तुमको पीटनेवाली... मैं देवी कैसे ?''

जो उस देव को जानता है उसको डाकिनी में भी देव दिखता है और जो उस देव को नहीं जानता उसको संत में भी देव नहीं दिखता, मूर्ति में तथा भगवान में भी देव नहीं दिखता। शकुनि को, दुर्योधन को श्रीकृष्ण में भगवान नहीं दिख रहे थे, शूर्पणखा को भगवान राम में देव नहीं दिख रहे थे लेकिन नामदेव को तो कुत्ते में भी देव दिख रहे थे, धन्ना जाट को सिलबट्टे में देव दिख रहे थे। संत एकनाथजी को गधे में भगवान दिख रहे थे। कुत्ते में भगवान, सिलबट्टे में भगवान, गधे में भगवान... तो यह निर्भर करता है कि देखनेवाले का भाव कैसा है, देखनेवाले का ज्ञान कैसा है, देखनेवाले का संग कैसा है, देखनेवाले की आकांक्षा कैसी है ? वह शुभ देखना चाहता है कि अशुभ देखना चाहता है ? अथवा शुभ और अशुभ जिसके प्रकाश में प्रकाशित हो रहे हैं, उस परम प्रकाश - अपने आपको देखना चाहता है, ब्रह्मवेत्ता होना चाहता है ?

और जिसके हृदय में ब्रह्मवेत्ता के लिए, भगवत्प्राप्त महापुरुषों के लिए स्नेह नहीं है, संतों के लिए श्रद्धा, भक्ति या प्रेम नहीं है, उसका हृदय तुच्छ-तुच्छ चीजों में डोलता रहेगा घड़ियाल के लोलक जैसा।

एक फकीर ने कहा है :

जो भरा नहीं है भावों से,
जिसमें बहती रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है पत्थर है,
जिसमें संतों के लिए प्यार नहीं ॥

और जिसके हृदय में भगवत्प्राप्त महापुरुषों के लिए प्रेम है, श्रद्धा है, भगवान के लिए प्रेम है, वह देर-सवेर परमात्म-तत्त्व को पा लेता है।

परिप्रश्नेन...

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

प्रश्न : आधुनिक युग में धर्म की जीवन में क्या आवश्यकता है ?

पूज्यश्री : यह प्रश्न ही बिल्कुल बचकाना है, मुझे सुनकर ही आश्चर्य होता है। जैसे कहें कि मनुष्य को श्वास की क्या जरूरत है ? अग्नि को दाहकता की क्या जरूरत है ? पानी को शीतलता की क्या जरूरत है ? अरे, शीतलता पानी का धर्म है। दाहकता अग्नि का धर्म है। ऐसे ही जीवन में धर्म नहीं हो तो बहुत बुरी हालत होगी। मनुष्य में धर्म न हो तो मनुष्यता ही नहीं रहेगी, मनुष्य दो पैरवाला पशु हो जायेगा।

आधुनिक युग है तो क्या हो गया ? आधुनिक युग में जितनी तबाही हो रही है, आधुनिकता के नाम पर युवान-युवतियों के साथ जितना जुल्म हो रहा है उतना किसी युग में नहीं हुआ । आधुनिक युग में भोग-विलास और मनमुखता इतनी बढ़ गयी कि बेटा-बेटी माँ-बाप के हितकारी उपदेश भी मानने को, हित की बात भी मानने को, करने को तैयार नहीं - इतना टी.वी. चैनलों के द्वारा बाहर का प्रभाव बढ़ गया। जैसे गंभीर हालत में आदमी को विशेष डॉक्टर की और विशेष औषधियों की आवश्यकता होती है, ऐसे ही आधुनिक युग में धर्म की विशेष जरूरत है।

धर्म आपमें स्वार्थ की जगह निःस्वार्थता लाता है, भय की जगह पर निर्भयता लाता है, उच्छृंखलता की जगह पर नियंत्रण लाता है, शोषण की जगह पर अपना और दूसरों का पोषण हो ऐसा ज्ञान और सूझबूझ देता है। अगर आपके जीवन में धर्म नहीं होगा तो क्या आपके जीवन में बरकत रहेगी, परोपकार रहेगा, सज्जनता रहेगी, शांति रहेगी, परदुःखकातरता रहेगी ? नहीं । अनपढ़ व्यक्ति जितनी सेवा कर सकता है उससे ज्यादा पढ़ा हुआ व्यक्ति कर सकता है लेकिन पढ़ा हुआ व्यक्ति अगर सत्संगी, धार्मिक नहीं है तो वह जितना आतंकवाद करता है, जितना हवाला कांड करता है, जितना बोफोर्स कांड करता है, जितनी हेरा-फेरी करता है उतना अनपढ़ नहीं कर सकता।

जीवन में धर्म चाहिए, कर्तव्यपालन का महत्त्व चाहिए । वह आयेगा सत्संग और सद्विचार से । धर्म आंतरिक अनुशासन करता है। वह धर्म ही है जो हमारी मानवता को चमकाता है, हमारे संसारी जीवन को सुंदर बनाता है और भोग व मोक्ष पाने में हमें सफल बनाता है। इसलिए धर्म की नितांत आवश्यकता है।

प्रश्न : आज धार्मिक कार्यक्रम-सत्संग आदि बढ़ रहे हैं पर हिंसा भी बढ़ रही है तो सत्संग का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

पूज्यश्री : हिंसा या अपराध बढ़ रहे हैं तो यह युग का प्रभाव है । पहले ऋषि आश्रमों में, गुरुकुलों में धर्म का शिक्षण दिया जाता था। अब धर्मनिरपेक्षता का भूत दौड़ा है तो न गीता का पाठ, न रामायण की सीख, न नीतिशास्त्र का ज्ञान, न ध्यान-भजन... ऐसे ही रटारटी करके बेचारे पदवियाँ पाते हैं, फिर सुख के लिए फिल्में देखते हैं और उनमें जो हिंसा दिखायी जाती है उसके प्रभाव से उनमें हिंसा बढ़ती है।

जिनके जीवन में धर्म है वे हिंसक रहे भी हों तो उनके जीवन में पचासों-पचासों गलतियों की जगह पर पाँच गलतियाँ होने लगती हैं । जो सत्संगी हैं वे इतना उत्पात नहीं करते जितना सत्संग, धर्म से वंचित लोग करते हैं; वे ही लोग हिंसा या उत्पात में ज्यादा उतरते हैं। जिन देशों में सत्संग, धर्म नहीं है उन देशों की हालत हमारे भारत से ज्यादा खराब है।

दुनिया के देशों का सर्वेक्षण करके बनायी गयी रिपोर्ट में बताया गया कि अमेरिका जैसे देशों में जहाँ धर्माचरण नहीं, सत्संग नहीं वहाँ एक साल में १६,८६,६०० बड़े गुनाह, बड़े अपराध होते हैं और कुल ६५,६५,८०५ हिंसक अपराध होते हैं। भारत में इतने नहीं होते। यह धर्म का ही प्रभाव है न बेटे ! वहाँ १०,००० नागरिकों के पीछे एक खून होता है, सात बलात्कार होते हैं, २२ लूटपाट होती हैं और ४३ गंभीर मारकाट होती हैं और १५५ साधारण मारकाट होती हैं । भारत में इन सबकी संख्या इतनी नहीं है - यह धर्म का, सत्संग का प्रभाव है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा

संत नामदेव महाराज के पूर्वज भगवान विट्ठल के नाम का जयघोष करते हुए पंढरपुर की यात्रा किया करते थे। भगवद्भक्ति के यही संस्कार उनके पिता दामासेठ के हृदय पर भी अंकित हो गये। उनकी माता गोणाई भी विट्ठलभक्त थीं। भगवान विट्ठल की पूजा करके उन्हें भोग अर्पित करना और कुछ समय उनके नाम का जप करने के बाद ही अपने दैनिक कार्यों में लगना यह दामासेठ का नित्यनियम बन गया था। वे दर्जी का काम करते हुए मुख से भगवान विट्ठल के नाम का जप करते रहते और एकादशी को उपवास रखते थे। भगवान को भोग लगाये बिना वे कभी अन्न नहीं खाते थे।

नामा की आँखों में आँसू उभर आये। वह बड़े करुण स्वर में बोला : ''देव ! यदि आप नहीं खाओगे तो मैं यहीं बैठा रहूँगा। क्यों एक छोटे बालक की परीक्षा लेते हो ? खा लो, खा लो न !''

इस प्रकार घर का वातावरण विट्ठलभक्ति से ओत-प्रोत था, जिसका प्रभाव बालक नामदेव के निर्दोष व कोमल हृदय पर पड़ा और वह भी विट्ठल का नाम जपता, अंतर्मुख होता और शांत होता था।

एक दिन किसी कार्यवश बाजार गये दामासेठ को वहाँ काम निपटाने में अधिक समय लग गया। भगवान को भोग लगाने का नियम न टूटे इसलिए गोणाई ने नामदेव से कहा : ''नामा ! यह थाली लेकर भगवान विट्ठल के मंदिर में जाओ और उन्हें भोग लगा आओ।''

बालक नामदेव मंदिर में गया और भगवान का पूजन-अर्चन करके उनके सामने भोग की थाली रख दी। उसे लगा कि भगवान थाली में रखा भोजन खायेंगे। उसने पर्दा हटाकर देखा कि ठाकुरजी ने अभी खाया नहीं है, फिर-फिर से देखा, ऐसा कई बार हुआ। निर्दोष हृदय बालक मानता था कि जैसे आम आदमी खाते हैं, वैसे ठाकुरजी भी खायेंगे। इसलिए वह हाथ जोड़कर वहीं एक कोने में खड़ा होकर प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद विट्ठल की मूर्ति की ओर देखते हुए बाल-सुलभ सरलता से वह बोला : ''प्रभु ! भोजन करना प्रारंभ करें।''

नामा ने जब देखा कि भगवान भोजन नहीं कर रहे हैं तो वह बड़ा उदास हो बोला : ''हे पांडुरंग ! क्या आपकी पूजा में मुझसे कोई कमी रह गयी है ? पर मैं करूँ भी क्या, मुझे पूजा की विधि आती भी तो नहीं ! इसलिए मेरे प्यारे विट्ठल ! आप जल्दी से भोजन कर लो। यदि आपको भोजन कराये बिना मैं घर जाऊँगा तो माँ मुझ पर नाराज होगी।''

खड़े-खड़े कुछ समय और बीतने पर नामा की आँखों में आँसू उभर आये। वह बड़े करुण स्वर में बोला : ''देव ! यदि आप नहीं खाओगे तो मैं यहीं बैठा रहूँगा। क्यों एक छोटे बालक की परीक्षा लेते हो ? खा लो, खा लो न !''

बालक नामा के निश्छल, प्रेमपूर्ण, करुण शब्दों ने भगवान विट्ठल के हृदय को जीत लिया। अमूर्त जो हृदय में और मूर्ति में छुपे थे, वे ब्रह्म नामदेव की निर्दोष दृढ़ श्रद्धा से प्रकट हुए, भोजन किया और नामा से कहा : ''देख नामा ! मैंने भोजन किया यह बात किसीसे कहना नहीं।''

भगवान के दिव्य रूप को देखकर मुग्ध हुए नामा ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और खाली थाल लिये घर पहुँचा, तब तक पिता दामासेठ लौट आये थे। नामा को देख माँ ने पूछा : ''अरे नामा ! प्रसाद कहाँ है ?''

''माँ ! वह तो पांडुरंग ने खा लिया।'' सरल हृदय नामा ने सारी बात बता दी।

सुनकर दामासेठ को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। वे नामा की निष्कपट वाणी पर अविश्वास भी

(शेष पृष्ठ २२ पर)

ब्रह्मचर्य की भूमिका

आदर्शमय जीवन के किसी कार्यक्रम में हम इतने तो डूब जायें कि उसके विरुद्ध अधोगामी कामवासना की वृत्ति हमारी नजर या स्मृति में स्वाभाविक रूप से आये ही नहीं।

ब्रह्मचर्यवृत्ति की तरफ हमारा समग्र रवैया कैसा होना चाहिए ? इसके पीछे किस प्रकार की भूमिका होनी चाहिए कि जीवन में इसका पालन करने में सरलता रहे ? इसकी तरफ हमें किस दृष्टि से देखना चाहिए ?

संयम का पालन कठिन नहीं है परंतु उसके पालन की आवश्यकता, उसका महत्त्व समझना बड़ा मुश्किल है। हमको ब्रह्मचर्यपालन बहुत कठिन लगता है अथवा उसके लिए किया जानेवाला पुरुषार्थ बहुत कष्टप्रद लगता है क्योंकि हकीकत में उसके पालन की आवश्यकता हम बराबर समझ ही नहीं सके हैं और यदि समझे भी हैं तो अंतर में दिल से उसकी लगन नहीं लगी होगी।

खूब गंभीरता से सोचनेवाली यह बात है। जगत के व्यवहार में मानव को पैसे के महत्त्व की जानकारी है, इसलिए उसे प्राप्त करने में उसे कोई श्रम उठाना पड़े या कुछ छोड़ना पड़े तो उसमें उसे कोई कष्ट पड़ने की या कष्ट उठाने की समस्या खड़ी नहीं होती। इसके विपरीत यदि धन मिलता हो तो आराम को छोड़कर वह सहर्ष पुरुषार्थ करने में लग जायेगा।

एक धुनी वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में नयी-नयी शोधों की धुन में वर्षों तक मौज-शौक को एक तरफ रख देता है। फिर भी उसे कोई कष्ट नहीं होता, परंतु आनंद का अनुभव होता है। वस्तु की उपयोगिता के माप में ही उसकी कीमत चुकानी चाहिए, यह व्यावहारिक सिद्धांत है। इसी तरह यदि ब्रह्मचर्य की महिमा हमारे ध्यान में आ जाय तो उसके पालन में करने लायक सभी त्याग करने के लिए हम कटिबद्ध हो जायेंगे।

जिस प्रकार माता अपने बालक के प्रति अद्भुत प्रेम के कारण उसके सभी छोटे-बड़े असंख्य कार्य निरंतर करने में कोई परिश्रम या अलगाव की भावना का अनुभव नहीं करती, उसी तरह ब्रह्मचर्य के प्रति प्रेम अथवा जिस साध्य का साधन ब्रह्मचर्य है उस साध्य के प्रति प्रेम और वफादारी इस हद तक होनी चाहिए कि ब्रह्मचर्य का पालन कोई विशेष तकलीफदायक कार्य है - ऐसी भावना हमारे मन में उत्पन्न ही न हो सके।

विधेयात्मक व्यवहार : एक विद्यार्थी गणित के सवाल को हल करने में इतना तो तन्मय हो गया था कि उसके कमरे में टिक-टिक करती घड़ी की आवाज या अन्य किसीकी उपस्थिति का वातावरण उसके ध्यान में आया ही नहीं। घड़ी की टिक-टिक आवाज नहीं सुनना, ऐसा तो उसका कोई ध्येय नहीं था, परंतु वह गणित के कार्य में इतना तन्मय हो गया था कि उस परिस्थिति में सहज रूप से टिक-टिक आवाज के प्रति उसका ध्यान जाता ही नहीं था।

एक दूसरा उदाहरण देखें - पश्चिम दिशा की तरफ नहीं देखने का मेरा ध्येय नहीं है किंतु पूर्व दिशा से उगते सूर्य को देखने में इतना तल्लीन हो गया हूँ कि स्वाभाविक रूप से पश्चिम दिशा की ओर मेरी दृष्टि जाती नहीं है। इसी तरह ब्रह्मचर्य के प्रति हमारा दृष्टिकोण विधेयात्मक होना चाहिए अर्थात् विषय-वासना नहीं चाहिए, ऐसे निषेधात्मक ख्याल से नहीं, परंतु ईश्वरदर्शन या उसके जैसे ही किसी महान आदर्श की सिद्धि के लिए एकाग्र बनकर जैसे कि गणित के सवाल हल करते हैं अथवा तो पूर्व में उगते सूर्य को एकाग्रतापूर्वक निहारने में हम इतने तल्लीन हो जाते हैं कि विषयवृत्ति के खिंचाव की तरफ हमारा ध्यान ही नहीं जाता या घड़ी की टिक-टिक की निरंतर आवाज हमें सुनायी नहीं देती अथवा पश्चिम दिशा

की तरफ हमारी नजर स्वाभाविक रूप से जाती ही नहीं है। आदर्शमय जीवन के किसी कार्यक्रम में हम इतने तो डूब जायें कि उसके विरुद्ध अधोगामी कामवासना की वृत्ति हमारी नजर या स्मृति में स्वाभाविक रूप से आये ही नहीं।

वैदिक युग में ऐसी आदर्शनिष्ठा की मूर्तिमंत नमूनेदार एक घटना भी मिलती है। पंडित वाचस्पति मिश्र वेदांत के एक महान ग्रंथ की रचना कर रहे थे। नवोढा पत्नी एकासन में कार्यरत अपने पति को उनके स्थान पर ही भोजन-पानी वगैरह देती है। सूर्यास्त होने पर दीया प्रकटाकर हाथ में रखकर पति के पीछे खड़ी रहती है, जिससे उसके प्रकाश में पंडितजी का लेखनकार्य चलता रहे। धर्मपत्नी की ऐसी अविरत सेवा और ऋषि की लेखन-साधना के सोलह साल बीत गये। एक शाम संध्या को दीप प्रकटाते ही बुझ गया। इससे काम अटक गया, तब ऋषि की नजर पीछे घूमकर ऊपर की ओर जाती है। स्त्री को वहाँ खड़ी देखते हैं और परिचय पूछते हैं क्योंकि सोलह साल से उसे देखा ही नहीं है। उत्तर मिलता है कि मैं आपकी सहधर्मिणी हूँ। सेवा में क्षति आ गयी उसे क्षम्य मानना। ऋषि को चोट लगती है कि मेरी पत्नी को विवाह करके आये हुए सोलह साल बीत गये, मैंने उसकी तरफ देखा भी नहीं। फिर भी नहीं फरियाद कि नहीं कोई विषाद, उलटे प्रसन्नतापूर्वक की कैसी सेवा और कैसा संयम ! उसकी महानता को वंदन करके, अभिनंदन करके अपने उस ग्रंथ को पत्नी का नाम 'भामती' देकर उसे अर्पण करते हैं।

ऋषि की उत्कट लेखन-साधना, ऋषिपत्नी की पति-सेवा का पुनित आदर्श - ऐसी दोनों की अपने-अपने कार्यक्रम की धुन ने यौवन में भी सोलह-सोलह साल ब्रह्मचर्यपालन किस सहजता से, सरलता से कर दिखाया - इसका यह एक प्रेरक उदाहरण है।

- श्री मलूकचंद शाह

आज्ञाकारी में नियंत्रण आयेगा और वासनाकारी में उच्छृंखलता आयेगी।

(पृष्ठ २० का शेष)

नहीं कर पा रहे थे और उन्हें यह विश्वास भी नहीं हो रहा था कि पांडुरंग ने भोजन किया होगा। उन्होंने नामा से पूछा : ''अच्छा नामा ! एक बात बताओ, क्या तुम मुझे भगवान पांडुरंग को भोजन करते हुए दिखा सकते हो ?''

नामा ने बड़े विश्वास के साथ कहा : ''क्यों नहीं ? कल दिखा दूँगा।''

दूसरे दिन पिता-पुत्र मंदिर गये। रोज की तरह पूजा की, भोग लगाया और प्रतीक्षा करने लगे कि पांडुरंग भोजन करें।

काफी देर तक प्रतीक्षा करने पर भी भगवान ने भोजन नहीं किया। अब नामा को चिंता होने लगी। वह मन-ही-मन भगवान से प्रार्थना करने लगा : 'हे भक्तवत्सल प्रभु ! यदि आप भोजन नहीं करोगे तो मेरे माता-पिता मुझे झूठा समझेंगे। वे तो यही मानेंगे कि कल का आपका भोग मैंने ही खा लिया था। क्या आप अपने भक्त पर झूठा कलंक लगने देंगे ? नहीं न ! तो फिर कृपा करके भोजन कर लो।'

इस पर भी भगवान की मूर्ति में कोई हिलचाल नहीं हुई तो नामा आर्त स्वर में कहने लगा : ''मेरे विट्ठल ! इतने कठोर क्यों बन रहे हो ? कल तो आपने भोग स्वीकार कर लिया था, फिर आज क्यों नहीं कर रहे हो ? भगवान होकर ऐसा करना क्या उचित है ?''

भक्तवत्सल श्रीविट्ठल का हृदय पिघला और उन्होंने अपना मुख खोला। नामा ने अपने नन्हे हाथों से भगवान को खिलाना शुरू किया। पिता ने यह दृश्य देखा तो वे गद्गद हो उठे। उन्हें इस बात का एहसास हुआ कि 'नामा के हृदय में भगवद्भक्ति के संस्कारों का बीज बोनेवाले हम तो पीछे रह गये किंतु हमारे इस सुपुत्र की प्रभुप्रीति व दृढ़ निष्ठा ने उस बीज को प्रभुमिलन के विशाल वृक्ष में परिणत कर दिया।'

नामदेवजी के जीवन में आगे कई ऐसी घटनाएँ हुईं जो उनकी दृढ़ भगवन्निष्ठा को दर्शाती हैं। भगवान विट्ठल ने उन्हें सद्गुरु-आश्रय लेकर अपने निर्गुण रूप का ज्ञान पाने का उपदेश दिया। विसोबा खेचर को गुरुरूप में पाकर नामदेवजी ने भगवान के निर्गुण रूप का **अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयं आत्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि** - वेदों के इन महावाक्यों का साक्षात्कार कर लिया व ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित हुए।

पूज्य बापूजी का साफ-स्पष्ट संदेश 'वैलेन्टाइन डे' पर

(विश्वमानव की मंगलकामना से भरे पूज्य बापूजी के परम हितकारी संदेश पढ़ें-पढ़ायें)

पाश्चात्य जगत में प्यार का दिवस (वेलेन्टाइन डे) मनाते हैं । जरूर मनायें, उसके लिए हमारी मनाही नहीं है। प्रेम का विकास होना चाहिए लेकिन प्रेम के नाम पर ये तो विनाश-दिवस है । युवक-युवतियाँ प्रेमदिवस की अंधी दौड़ में एक-दूसरे से मिलेंगे तो उससे कामविकार भड़केगा, जीवनीशक्ति का अधिक ह्रास होगा, जिससे आनेवाली संतति निस्तेज बनेगी, रुग्ण बनेगी और स्वयं उनमें भी वृद्धता (बुढ़ापा) जल्दी आयेगा।

प्रेमदिवस (वेलेन्टाइन डे) जरूर मनायें, लेकिन संयम और सच्चा विकास प्रेमदिवस में लाना चाहिए । युवक-युवती मिलेंगे तो विनाश-दिवस बनेगा । इस दिन बच्चे-बच्चियाँ माता-पिता का आदर-पूजन करें और उनके सिर पर पुष्प रखें, प्रणाम करें तथा माता-पिता अपनी संतानों को प्रेम करें । संतान अपने माता-पिता के गले लगें । इससे वास्तविक प्रेमदिवस पैदा होगा । इससे वास्तविक प्रेम का विकास होगा । यहाँ तो प्रेमदिवस (वेलेन्टाइन डे) के नाम पर विनाशकारी काम का, विकारी काम का विकास हो रहा है, जो आगे चलकर चिड़चिड़ापन, खोखलापन, जल्दी बुढ़ापा और मौत लानेवाला दिवस साबित होगा । अतः भारतवासी अंधपरंपरा से सावधान हों ! तुम भारत के लाल और भारत की लालियाँ (बेटियाँ) हो । प्रेमदिवस मनाओ, अपने माता-पिता का सम्मान करो और माता-पिता बच्चों को स्नेह करें । करोगे न बेटे ऐसा ! पाश्चात्य लोग विनाश की ओर जा रहे हैं । पाश्चात्य लोग ऐसे दिवस मनाकर रोगों के घर बन रहे हैं, अशांति की आग में तप रहे हैं। उनकी नकल तो नहीं करोगे ?

प्रेमदिवस (वेलेन्टाइन डे) जरूर मनायें, लेकिन संयम और सच्चा विकास प्रेमदिवस में लाना चाहिए।

मेरे प्यारे युवक-युवतियो और उनके माता-पिता ! आप भारतवासी हैं । दूरदृष्टि के धनी ऋषि-मुनियों की संतान हैं । प्रेमदिवस (वेलेन्टाइन डे) के नाम पर बच्चों, युवान-युवतियों की कमर टूटे, ऐसे दिवस का त्याग करके माता-पिता और संतानो ! प्रभु के नाते एक-दूसरे को प्रेम करके अपने दिल के परमेश्वर को छलकने दें । काम-विकार नहीं, रामरस, प्रभुप्रेम, प्रभुरस।

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । बालिकादेवो भव । कन्यादेवो भव । पुत्रदेवो भव ।

प्रेमदिवस वास्तव में सबमें छुपे हुए देव को प्रीति करने का दिवस है । अगर यह बात मानते हो तो ठीक है, नहीं तो पाश्चात्य ढंग से प्रेमदिवस (वेलेन्टाइन डे) मनाने के बुरे हाल देखने के लिए तैयार रहो।

देशवासी और विश्ववासी, सबका मंगल हो । भारत के भाई, बहनो ! ऐसा आचरण करो कि मेरे विश्व के भाई, बहनों का भी मंगल हो । उनका अनुकरण आप क्यों करो ? आपका अनुकरण करके वे सद्भागी हो जायें । जो बीत गया सो बीत गया । अब माता-पिता, बालक-बालिकाओं के बीच प्रेमदिवस हो । अब अगला प्रेमदिवस (वेलेन्टाइन डे) आये तो युवक-युवतियाँ अंधपरंपरा में न फँसें बल्कि अपने माता-पिता का सम्मान-पूजन करें । हे भारत के लाल ! तुम्हारा अनुकरण करके विश्वमानव का मंगल हो।

समत्वयोग

जब साधक का किसी प्राणी में वैरभाव - द्वेष नहीं रहता, तब सबमें समान भाव से प्रेम हो जाता है। आसक्ति और स्वार्थ को लेकर जो प्राणियों में प्रियता होती है वह प्रेम नहीं है, वह तो मोह है। अतः वह प्रियता, जिस-जिस व्यक्ति या पदार्थ में ममता होती है, वहीं होती है; विभु (व्यापक) नहीं होती। उसमें द्वेष का अभाव नहीं होता परंतु जो द्वेष का समूल नाश होने पर समभाव से सबमें प्रेम होता है, वह विशुद्ध प्रेम है। उसमें किसीसे कुछ लेना नहीं रहता। अतः वह प्रेम देखने में प्राणियों के साथ होने पर भी वास्तव में भगवान में ही है।

शास्त्रों में जो सुख-दुःख को समान समझने की बात कही जाती है, उसका भी यही भाव मालूम होता है कि दोनों का एक ही नतीजा हो। परिणाम में भेद न हो। जब साधक सुख-दुःख का कारण दूसरे को न मानकर प्रारब्ध को या प्रमाद को अथवा भगवान की अहैतुकी कृपा को मान लेता है, तब उसका दोनों प्रकार की परिस्थितियों में भेदभाव नहीं रहता। उसके लिए अनुकूल परिस्थिति के समान ही प्रतिकूल परिस्थिति भी प्रसन्नता और विकास का कारण बन जाती है। साधक भोग से योग की ओर, मृत्यु से अमरता की ओर तथा राग-द्वेष से त्याग और प्रेम की ओर आकर्षित हो जाता है।

जो प्राणी सुख मिलने पर उसके उपभोग में लोलुप हो जाता है और दुःख आने पर भयभीत हो जाता है, वह बेचारा सुख-दुःख का सदुपयोग नहीं कर पाता, जिसका न करना वास्तव में अवनति का मूल है।

उपर्युक्त भावना से सुख 'उदार' बनाने में और दुःख 'विरक्त' बनाने में समर्थ है, जिससे प्राणी का हित ही होता है। जो प्राणी सुख मिलने पर उसके उपभोग में लोलुप हो जाता है और दुःख आने पर भयभीत हो जाता है, वह बेचारा सुख-दुःख का सदुपयोग नहीं कर पाता, जिसका न करना वास्तव में अवनति का मूल है।

सुख-दुःख में साधन-बुद्धि करके उनका उपर्युक्त प्रकार से उपयोग करना साधक के लिए परम आवश्यक है। सुख-दुःख के उपयोगयुक्त जीवन को जीवन मान लेना भूल है। जीवन तो वास्तव में वह है, जिसका अनुभव सुख-दुःख से रहित होने पर होता है।

परदोषदर्शन से बचें

साधक को चाहिए कि वह परदोषदर्शन को सर्वथा त्याग दे, क्योंकि दोष करने की अपेक्षा दोषों का चिंतन अधिक पतन करनेवाला है। दोषों को क्रियारूप में करने में तो बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, परंतु दोषों के चिंतन में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं प्रतीत होती। इस कारण उनके चिंतन में रस लेने की आदत स्वाभाविक-सी हो जाती है।

इस आदत का त्याग करने के लिए साधक को अपने दोष देखने की आदत डालनी चाहिए। जितनी गहराई से वह अपने दोष देखेगा, उतना ही उसको अपने दोषों का अधिक भान होगा एवं जैसे-जैसे वह उन दोषों को सचमुच दोष मानता जायेगा, वे उससे दूर होते चले जायेंगे। मनुष्य यह समझकर भी कि मुझमें अमुक दोष है, किसी-न-किसी अंश में उसमें रस लेता रहता है और उसमें गुण-बुद्धि कर लेता है। यही कारण है कि अपने में जिस दोष को मनुष्य स्वीकार करता है, उसे भी छोड़ता नहीं; उससे चिपका रहता है। अतः साधक को चाहिए कि अपने दोष को गहराई से देखे और विचारपूर्वक उसे छोड़ने का दृढ़ संकल्प करे। जो भूल अपनी समझ में आ जाय, उसको पुनः नहीं दोहराये। ऐसा करने से साधक का जीवन बहुत शीघ्र परिवर्तित हो सकता है। अपने दोषों को देखकर उनका त्याग कर देना ही लाभप्रद है, उनका चिंतन करना नहीं क्योंकि चिंतन करने से उनका राग नहीं मिटता। मनुष्य का जीवन सर्वथा दोषयुक्त नहीं होता, उसमें गुण भी रहते ही हैं, परंतु उन गुणों में जो अभिमान है, वह भी दोष ही है। अतः साधक को गुणों के अभिमान का भी त्याग कर देना चाहिए। दोषों की उत्पत्ति न हो और गुणों का अभिमान न हो, यही वास्तविक निर्दोषता है।

नौ योगीश्वरों की कथा

विदेहराज निमि ने कहा : भगवन् ! मैं ऐसा समझता हूँ कि आप लोग भगवान मधुसूदन के पार्षद ही हैं, क्योंकि भगवान के पार्षद संसारी प्राणियों को पवित्र करने के लिए विचरण किया करते हैं। जीवों के लिए मनुष्य-शरीर का प्राप्त होना दुर्लभ है। यदि यह प्राप्त भी हो जाता है तो प्रतिक्षण मृत्यु का भय सिर पर सवार रहता है, क्योंकि यह क्षणभंगुर है। इसलिए अनिश्चित मनुष्य-जीवन में भगवान के प्यारे और उनको प्यार करनेवाले भक्तजनों का, संतों का दर्शन तो और भी दुर्लभ है। इसलिए त्रिलोकपावन महात्माओ ! हम आप लोगों से यह प्रश्न करते हैं कि परम कल्याण का स्वरूप क्या है ? और उसका साधन क्या है ? इस संसार में आधे क्षण का सत्संग भी मनुष्यों के लिए परम निधि है। योगीश्वरो ! यदि हम सुनने के अधिकारी हों तो आप कृपा करके भागवत-धर्मों का उपदेश कीजिये, क्योंकि उनसे जन्मादि विकार से रहित, एकरस भगवान श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं और उन धर्मों का पालन करनेवाले शरणागत भक्तों को अपने-आप तक का दान कर डालते हैं।

देवर्षि नारदजी ने कहा : वसुदेवजी ! जब राजा निमि ने उन भगवत्प्रेमी संतों से यह प्रश्न किया, तब उन लोगों ने बड़े प्रेम से उनका और उनके प्रश्न का सम्मान किया और सदस्य तथा ऋत्विजों के साथ बैठे हुए राजा निमि से बोले।

पहले उन नौ योगीश्वरों में से कविजी ने कहा : राजन् ! भक्तजनों के हृदय से कभी दूर न होनेवाले अच्युत भगवान के चरणों की नित्य-निरंतर उपासना ही इस संसार में परम कल्याण-आत्यन्तिक क्षेम है और सर्वथा भयशून्य है, ऐसा मेरा निश्चित मत है। देह, गेह आदि तुच्छ एवं असत् पदार्थों में अहंता व ममता हो जाने के कारण जिन लोगों की चित्तवृत्ति उद्विग्न हो रही है, उनका भय भी इस उपासना का अनुष्ठान करने पर पूर्णतया निवृत्त हो जाता है। भगवान ने भोले-भाले अज्ञानी पुरुषों को भी सुगमता से साक्षात् अपनी प्राप्ति के लिए जो उपाय स्वयं श्रीमुख से बतलाये हैं, उन्हें ही 'भागवत धर्म' समझो। राजन् ! इन भागवत धर्मों का अवलम्बन करके मनुष्य कभी विघ्नों से पीड़ित नहीं होता और नेत्र बंद करके दौड़ने पर भी अर्थात् विधि-विधान में त्रुटि हो जाने पर भी न तो मार्ग से स्खलित ही होता है और न तो पतित अर्थात् फल से वंचित ही होता है। (भागवत धर्म का पालन करनेवाले के लिए यह नियम नहीं है कि वह एक विशेष प्रकार का कर्म ही करे।) वह शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, अहंकार से, अनेक जन्मों अथवा एक जन्म की आदतों से स्वभाववश जो-जो करे, वह सब परम पुरुष भगवान नारायण के लिए ही है - इस भाव से उन्हें समर्पण कर दे। (यही सरल-से-सरल, सीधा-सा भागवत धर्म है)। ईश्वर से विमुख पुरुष को उनकी माया से अपने स्वरूप की विस्मृति हो जाती है और इस विस्मृति से ही 'मैं देवता हूँ, मैं मनुष्य हूँ,' इस प्रकार का भ्रम-विपर्यय हो जाता है। इस देह आदि अन्य वस्तुओं में अभिनिवेश, तन्मयता होने के कारण ही बुढ़ापा, मृत्यु, रोग, आदि अनेकों भय होते हैं। इसलिए अपने गुरु को ही आराध्य देव, परम प्रियतम मानकर अनन्य भक्ति के द्वारा उस ईश्वर का भजन करना चाहिए। राजन् ! सच पूछो तो भगवान के अतिरिक्त, आत्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। परंतु न होने पर भी उनकी प्रतीति, उनका चिंतन करनेवाले को उनके चिंतन के कारण, उधर मन लगने के कारण ही होती है, जैसे स्वप्न के समय स्वप्नद्रष्टा की कल्पना से अथवा जाग्रत-अवस्था में नाना प्रकार के मनोरथों से एक विलक्षण ही सृष्टि दिखने लगती है। इसलिए विचारवान पुरुष को चाहिए कि सांसारिक कर्मों के संबंध में संकल्प-विकल्प करनेवाले मन को रोक दे, कैद कर ले। बस, ऐसा करते ही उसे अभय पद की, परमात्मा की प्राप्ति हो जायेगी। संसार में भगवान के जन्म की और लीला की बहुत-सी मंगलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनको सुनते रहना चाहिए। उन गुणों और लीलाओं का स्मरण दिलानेवाले भगवान के बहुत-से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लाज-संकोच छोड़कर उनका गान करते रहना चाहिए।

(क्रमशः)

महान भगवद्भक्त

(गतांक से आगे)

प्रह्लादजी द्वारा भगवान की स्तुति

हे भूमन् ! वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल - ये पंच महातत्त्व और इनकी मात्राएँ, प्राण, इन्द्रियाँ, हृदय, चित्त और अहंकार, यह जो कुछ सगुण-निर्गुण है तथा मन-वचन द्वारा जो कुछ जाना एवं कहा जा सकता है, वह सब आप ही हैं; आपसे भिन्न संसार में कुछ भी नहीं है। हे उरुकाय (विशालकाय) ! ये सब गुण-अवगुण एवं महदादि तथा मनु से लेकर देव, मनुष्यपर्यंत सब आप ही को मानते हैं । हे पूज्यतम ! इसी कारण आपको नमस्कार, आपकी स्तुति, आपकी पूजा, आपका स्मरण, आपकी कथा का श्रवण और आपको आत्मसमर्पण - इस षडंगभक्ति के बिना उत्तम गति की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए परमहंस की गति में ही लोग इस परमोत्तम भक्ति को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार भक्त प्रह्लादजी की विस्तृत स्तुति सुनकर भगवान नृसिंहजी ने अपना तेजोमय विकराल रूप सौम्य एवं मनोहर कर लिया और बारंबार की घोर गर्जना को बंद कर मधुर वाणी से कहा : 'हे प्रह्लाद ! हे भद्र ! तुम्हारा कल्याण हो । मैं तुमसे अत्यंत प्रसन्न हूँ । हे असुरोत्तम ! तुमको जो अभीष्ट हो वही वर माँगो । मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा ।' भगवान के इस प्रकार कहने पर भी परम भागवत प्रह्लाद ने कोई वर नहीं माँगा। उन्होंने कहा : 'भगवन् ! मैंने कामनाओं से पिण्ड छुड़ाने के लिए ही आपके चरणों की शरणागति ली है। फिर भी आप मुझे उसी कामना के बंधन में बाँधना चाहते हैं, यह बड़े अचरज की बात है। अवश्य ही आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं, किंतु वस्तुतः आप ऐसा कभी करेंगे नहीं, क्योंकि आप दयानिधि हैं। आप अवश्य ही मुझ पर दया करेंगे और इस कामनामय संसार के बंधन से मुझे छुड़ायेंगे। हे नाथ ! जो दास अपने स्वामी से सेवा का बदला चाहता है वह दास दास नहीं, पूरा बनिया है और जो स्वामी अपने दास से सेवा करवाकर उसको कुछ देकर टालने की इच्छा करता है, वह स्वामी भी स्वामी कहलाने योग्य नहीं है।

इतने पर भी यदि आप मुझको वर माँगने की ही आज्ञा देते हैं तो मैं आपकी इस आज्ञा का पालन करता हूँ। इस दशा में मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि **'कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्'** हे नाथ ! मेरे हृदय में कभी किसी वस्तु की कामना का अंकुर ही पैदा न हो। क्योंकि जैसे ही मन में कामना उत्पन्न होती है, वैसे ही इन्द्रियाँ, मन, प्राण, आत्मा, धर्म, धृति, मति, लज्जा, श्री, तेज, स्मृति व सत्य नष्ट हो जाते हैं और जैसे ही कामना को मनुष्य अपने मन से निकाल फेंकता है, वैसे ही वह भगवान की कृपा से अमृतत्त्व को प्राप्त हो जाता है। अतः मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि मेरे मन में कभी वर की इच्छा ही उत्पन्न न हो।

नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने।
हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥

'हे भगवन् ! आपको मेरा नमस्कार है । परब्रह्म परमात्मा को मेरा नमस्कार है । आपकी इस अद्भुत सिंहरूपी मूर्ति को और इस महापुरुष स्वरूप को मेरा बारंबार नमस्कार है।' प्रह्लादजी ने इतना सब कुछ कहने के पश्चात् भगवान के बारंबार कहने पर एक वर माँगा कि 'हे नाथ ! मेरे पिताजी ने आपको अपने भाइं को मारनेवाला कहकर जो आपका अपमान किया है, आपके ईश्वरत्व-तेज की जो निंदा की है और मुझे आपका भक्त होने के कारण जो सताया है, इन सब पापों से मेरे पूज्यपाद पिताजी को आप मुक्त कर दें।'

प्रह्लादजी के वचनों को सुनकर भगवान नृसिंहजी बड़े ही प्रसन्न हुए और कहने लगे कि 'तुम जैसे परम भागवत के लिए कामनारहित होना ही ठीक है। इसीसे तुम कोई वर नहीं माँगते किंतु मैं तुमको अपनी ओर से यह वर देता हूँ कि इस चाक्षुष मनु के समय तक तुम अक्षय राजसुख भोगो और अंत में मेरे पद को प्राप्त होओ। अपने पिताजी के विषय में तो तुमको संदेह ही नहीं करना चाहिए क्योंकि तुम जैसे परम भागवत जिस कुल में उत्पन्न होते हैं, उस कुल के इक्कीस पुरुष पवित्र हो जाते हैं। फिर तुम्हारे पिता की तो बात ही क्या है ? वे तो मेरे हाथों मृत्यु को प्राप्त हुए हैं।'

भगवान श्रीनृसिंह को प्रसन्न जान महालक्ष्मीजी भी उनके निकट जा विराजीं। तदनन्तर देवता, यक्ष, गंधर्व आदि सभी लोग उनकी स्तुति करने लगे। सबसे पहले ब्रह्माजी ने कहा : 'भगवन्! आपका यह अद्भुत रूप हम लोगों ने कभी नहीं देखा था। इस रूप को देखकर हम लोग स्तम्भित हो गये थे। नाथ! प्रह्लाद के सबंध से देवताओं के प्रबल शत्रु दैत्यराज का वध कर आपने संसार में सुख-शांति की स्थापना की है। अतः यह समय बड़े आनंद का है। भगवन्! आपके चरणों में हमारा बारंबार प्रणाम है।' (क्रमशः)

(पृष्ठ ७ का शेष)

साधु, संत, त्यागी, वैरागी, लोकसेवी इसे सम्मानपूर्वक धारण करते हैं।

इस प्रकार हमारे स्वास्थ्य व मनोभावों पर रंगों का अद्भुत प्रभाव होता है।

वैज्ञानिकों के अनुसार जल की यह विशेषता है कि सूर्यकिरणों के साथ सम्मिश्रण से जीवित पदार्थों में वह तुरंत ही सजीव प्रतिक्रिया पैदा करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राकृतिक रंगों से होली खेलने की हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा चलायी गयी प्राचीन परंपरा कितनी दूरदृष्टिपूर्ण है ! पूज्य बापूजी के सान्निध्य में सूरत आश्रम में आयोजित होनेवाले 'होलिकोत्सव' में भी हर वर्ष विभिन्न तीर्थों का जल, गंगाजल, पलाश के फूलों का रंग तथा अन्य प्राकृतिक रंगों का मिश्रण बनाया जाता है। पूज्य बापूजी अपने करकमलों से उसे बड़े फव्वारों के रूप में भक्तों पर छिड़कते हैं और होली के वैज्ञानिक, शास्त्रीय, प्राकृतिक लाभों के साथ बीच-बीच में सत्संग के अनमोल वचनों द्वारा आत्मिक रंग बरसाकर होली का आध्यात्मिक लाभ भी प्रदान करते हैं। धनभागी हैं वे जो उस धरा पर आ पाते हैं और अनुभव कर पाते हैं। यह रंगोत्सव १२ से १५ मार्च २००६ तक होगा।

संतों की कृपा किन पर उतरती है ?

प्रसिद्ध भक्त कोकिलजी एक मित्र को साथ लेकर संतों के दर्शन करने गये। मदनमोहनजी के मंदिर के पास बंगाली महात्माओं के दर्शन करने के समय उन्होंने अपने मित्र को तो बाहर बिठा दिया और स्वयं भीतर चले गये। कोकिलजी ने सब महात्माओं को फल-फूल भेंट करके बड़ी नम्रता से दण्डवत् प्रणाम किया। उनके पूछने पर बताया : "मैं सिंध का रहनेवाला एक गरीब गृहस्थ हूँ। आप सब संत हैं। मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मुझे प्रभु का सच्चा अनुराग प्राप्त हो।" कोकिलजी की निर्मल श्रद्धा और अद्भुत नम्रता देखकर महात्मा बहुत प्रसन्न हुए और बड़े प्यार से मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देने लगे : "श्रीकृष्णे मतिः श्रीकृष्णे मतिः श्रीकृष्णे मतिः !" अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण में तुम्हारी बुद्धि लगे।

कोकिलजी ने लौटकर अपने मित्र से कहा : "ये संत कृपासागर हैं। दर्शन करके आशीर्वाद ले आओ।" वह वहाँ गया और तुरंत लौट आया। बोला : "स्वामीजी ! उन लोगों ने तो आशीर्वाद दिया नहीं, उलटे मेरे पाँव पड़ने लगे।" कोकिलजी ने कहा : "तुमने अपना बड़प्पन बताया होगा।"

मित्र बोला : "मैंने अपने को साधु बताया।"

कोकिलजी : "बस, यही कारण है। संतजनों-गुरुजनों के सामने सदा नम्र होकर जाना चाहिए।"

(९ अप्रैल २००६)

कामदा एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : वासुदेव ! आपको नमस्कार है। कृपया आप यह बताइये कि चैत्र शुक्लपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! एकाग्रचित्त होकर यह पुरातन कथा सुनो, जिसे वसिष्ठजी ने राजा दिलीप के पूछने पर कहा था।

दिलीप ने पूछा : भगवन् ! मैं एक बात सुनना चाहता हूँ - चैत्र मास के शुक्लपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है ?

वसिष्ठजी बोले : राजन् ! चैत्र शुक्लपक्ष में 'कामदा' नाम की एकादशी होती है। वह परम पुण्यमयी है। पापरूपी ईंधन के लिए तो वह दावानल ही है।

प्राचीन काल की बात है :

नागपुर नाम का एक सुंदर नगर था, जहाँ सोने के महल बने हुए थे। उस नगर में पुण्डरीक आदि महा भयंकर नाग निवास करते थे।

पुण्डरीक नाम का नाग उन दिनों वहाँ राज्य करता था। गंधर्व, किन्नर और अप्सराएँ भी उस नगर का सेवन करती थीं। वहाँ एक श्रेष्ठ अप्सरा थी, जिसका नाम ललिता था। उसके साथ ललित नामवाला गंधर्व भी था। वे दोनों पति-पत्नी के रूप में रहते थे। दोनों ही परस्पर काम से पीड़ित रहा करते थे। ललिता के हृदय में सदा पति की ही मूर्ति बसी रहती थी और ललित के हृदय में सुंदरी ललिता का नित्य निवास था।

एक दिन की बात है। नागराज पुण्डरीक राजसभा में बैठकर मनोरंजन कर रहा था। उस समय ललित का गान हो रहा था किंतु उसके साथ उसकी प्यारी ललिता नहीं थी। गाते-गाते उसे ललिता का स्मरण हो आया। अतः उसके पैरों की गति रुक गयी और जीभ लड़खड़ाने लगी।

नागों में श्रेष्ठ कर्कोटक को ललित के मन का संताप ज्ञात हो गया। अतः उसने राजा पुण्डरीक को उसके पैरों की गति रुकने और गान में त्रुटि होने की बात बता दी। कर्कोटक की बात सुनकर नागराज पुण्डरीक की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। उसने गाते हुए कामातुर ललित को शाप दिया :

''दुर्बुद्धे ! तू मेरे सामने गान करते समय भी पत्नी के वशीभूत हो गया, इसलिए राक्षस हो जा।''

महाराज पुण्डरीक के इतना कहते ही वह गंधर्व राक्षस हो गया। भयंकर मुख, विकराल आँखें और देखनेमात्र से भय उपजानेवाला रूप - ऐसा राक्षस होकर वह कर्म का फल भोगने लगा।

ललिता अपने पति की विकराल आकृति देख मन-ही-मन बहुत चिन्तित हुई। भारी दुःख से वह कष्ट पाने लगी। सोचने लगी, 'क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ? मेरे पति पाप से कष्ट पा रहे हैं।'

वह रोती हुई घने जंगलों में पति के पीछे-पीछे घूमने लगी। वन में उसे एक सुंदर आश्रम दिखायी दिया, जहाँ एक मुनि शांत बैठे हुए थे। किसी भी प्राणी के साथ उनका वैर-विरोध नहीं था। ललिता शीघ्रता के साथ वहाँ गयी और मुनि को प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हो गयी। मुनि बड़े दयालु थे। उस दुखिया को देखकर वे इस प्रकार बोले : ''शुभे ! तुम कौन हो ? कहाँ से आयी हो ? मेरे सामने सच-सच बताओ।''

ललिता ने कहा : ''महामुने ! वीरधन्वा नामवाले एक गंधर्व हैं, मैं उन्हीं महात्मा की पुत्री हूँ। मेरा नाम ललिता है। मेरे स्वामी अपने पाप-दोष के कारण राक्षस हो गये हैं। उनकी यह अवस्था देखकर मुझे चैन नहीं है। ब्रह्मन् ! इस समय मेरा जो कर्तव्य हो, वह बताइये।

विप्रवर ! जिस पुण्य के द्वारा मेरे पति राक्षसभाव से छुटकारा पा जायें, उसका उपदेश कीजिये।''

ऋषि बोले : ''भद्रे ! इस समय चैत्र मास के शुक्लपक्ष की 'कामदा' नामक एकादशी तिथि है, जो सब पापों को हरनेवाली और उत्तम है। तुम उसीका विधिपूर्वक व्रत करो और उस व्रत का जो पुण्य हो, उसे अपने स्वामी को दे डालो। पुण्य देने पर क्षणभर में ही उसके शाप का दोष दूर हो जायेगा।''

राजन् ! मुनि का यह वचन सुनकर ललिता को बड़ा हर्ष हुआ। उसने एकादशी को उपवास करके द्वादशी के दिन उन ब्रह्मर्षि के समीप ही भगवान वासुदेव के (श्रीविग्रह के) समक्ष अपने पति के उद्धार के लिए यह वचन कहा : ''मैंने जो यह 'कामदा एकादशी' का उपवास-व्रत किया है, उसके पुण्य के प्रभाव से मेरे पति का राक्षसभाव दूर हो जाय।''

वसिष्ठजी कहते हैं : ललिता के इतना कहते ही उसी क्षण ललित का पाप दूर हो गया। उसका राक्षसभाव चला गया और उसने दिव्य देह धारण कर ली। उसे पुनः गंधर्वत्व की प्राप्ति हुई।

नृपश्रेष्ठ ! वे दोनों पति-पत्नी 'कामदा' के प्रभाव से पहले की अपेक्षा भी अधिक सुंदर रूप धारण करके विमान पर आरूढ़ होकर अत्यंत शोभा पाने लगे। यह जानकर इस एकादशी के व्रत का यत्नपूर्वक पालन करना चाहिए।

मैंने लोगों के हित के लिए तुम्हारे सामने इस व्रत का वर्णन किया है। 'कामदा एकादशी' ब्रह्महत्या आदि पापों तथा पिशाचत्व आदि दोषों का नाश करनेवाली है। राजन् ! इस माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है।

(पद्म पुराण से)

सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥

'समस्त पुण्यों, श्रेय के सम्पूर्ण साधनों और समस्त यज्ञों में जप यज्ञ को ही सर्वोत्तम माना गया है।'

(स्कंद पुराण, ब्रा. खं. : १.७)

प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम हरेदघम् ॥

'जैसे आग की चिनगारी भूल से भी छू जाय तो वह जला ही देती है, उसी प्रकार होंठों से हरिनाम का स्पर्श होते ही वह समस्त पापों को हर लेता है।'

(स्कंद पुराण, काशी खं., पू. : २१.५७)

किमत्र बहुनोक्तेन सर्वकामफलस्पृहः।
कृष्णाय नम इत्येवं मन्त्रमुच्चारयेद् बुधः ॥
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

'इस विषय में बहुत कहने की क्या आवश्यकता, जो सब कामनाओं का फल प्राप्त करना चाहता हो, वह विद्वान मनुष्य 'श्रीकृष्णाय नमः' इस मंत्र का उच्चारण करता रहे। सबको अपनी ओर खींचनेवाले कृष्ण, सबके हृदय में निवास करनेवाले वासुदेव, पाप-ताप को हरनेवाले श्रीहरि परमात्मा तथा प्रणतजनों का क्लेश दूर करनेवाले भगवान गोविंद को बारंबार नमस्कार है।'

(पद्म पुराण, उत्तर खं. : २७९.१०६, १०७)

इदमेव हि माङ्गल्यमिदमेव धनार्जनम्।
जीवितस्य फलं चैतद् यद्दामोदरकीर्तनम् ॥

'भगवान दामोदर के गुणों का कीर्तन ही मंगलमय है, वही धन का उपार्जन है तथा वही इस जीवन का फल है।'

(पद्म पुराण, पाताल खं. : ९२.१२)

हलकी मानसिकतावाला एक अखबार भारत के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू की निंदा में जुट गया। इससे उनके प्रशंसकों को दुःख होता था। उन्होंने राजेन्द्र बाबू से आग्रह किया कि उसका खण्डन छपवायें, उसका विरोध करें। राजेन्द्र बाबू ने कहा : 'हाथी जा रहा है, उस पर कुत्ता भौंक रहा है। यदि हाथी कुत्ते का पीछा करे तो कुत्ते का महत्त्व बढ़ जाता है। समझ गये।'

वसिष्ठजी, कबीरजी, नानकजी, तुकारामजी, एकनाथजी तथा और भी धरती पर श्रेष्ठ महापुरुष हुए हैं। उनकी निंदा करनेवाले निंदकों ने भक्तों और महापुरुषों पर कितने लांछन लगाये !

राजेन्द्र बाबू, वसिष्ठजी और इतने संतों पर भी वे हलकेपन का परिचय देते हैं, अगर तुम्हारे-हमारे लिए करें तो क्यों व्यथित होवें। कबीरजी को भी ऐसे निंदक मिले थे।

सोंठ के लाभ

अदरक का छिलका हटाकर उसे १०-१२ दिन धूप में सुखाने से सोंठ बन जाता है। अदरक तीखा, रूखा, उष्ण व तीक्ष्ण होने के कारण कफ तथा वायु का नाश करता है व पित्त को बढ़ाता है। सोंठ अपने उष्ण गुण से कफ-वायु का तो नाश करती है परंतु स्निग्ध व मधुर गुणों से पित्त को बढ़ने नहीं देती व दूषित पित्त को स्वच्छ कर देती है।

सोंठ का सर्वश्रेष्ठ गुण है आमपाचन। आहार का सम्यक् पाचन न होने के कारण जो विकृत आहार रस (आम) उत्पन्न होता है, वही सभी व्याधियों का मूल है। सोंठ इस विकृत आहार रस का पाचन कर व्याधि को जड़सहित नष्ट करने में सहायभूत होती है यह हृदय-दौर्बल्य, हृदयशूल में विशेष लाभदायी है।

औषधि-प्रयोग

आमदोष : २ ग्राम सोंठ १०० मि.ली. पानी में आधा पानी शेष रहने तक उबालें। यह सोंठसिद्ध जल कुछ दिनों तक सुबह खाली पेट नियमित लेने से आमदोष नष्ट हो जाता है।

सायटिका : २ ग्राम सोंठ १०० मि.ली. पानी में उबालें। एक चौथाई पानी शेष रहने पर १० से २० मि.ली. अरण्डी का तेल मिलाकर सुबह सूर्योदय के बाद लें। यह प्रयोग सायटिका में बहुत लाभदायी है।

अम्लपित्त : भोजन के बाद सोंठ, आँवला व मिश्री का समभाग मिश्रण (५ ग्राम) लेने से अम्लपित्त में लाभ होता है।

खाँसी व श्वास :

१. सोंठ, छोटी हरड़ व नागरमोथ के समभाग मिश्रण को गुड़ में मिलाकर २-२ ग्राम की गोली बना लें। यह गोली चूसने से खाँसी-श्वास में आराम मिलता है।

२. सोंठ को जलाकर राख बनायें। आधा चम्मच राख शहद में मिलाकर चाटने से श्वास (दमा) के वेग में राहत मिलती है।

जुकाम : १ ग्राम सोंठ, १ ग्राम दालचीनी व मिश्री को १०० मि.ली. पानी में उबालकर लेने से लाभ होता है।

कृमि : सोंठ व वायविडंग के समभाग मिश्रण में गुड़ मिलाकर २-२ ग्राम की गोली बनायें। १ से २ गोली सुबह खाली पेट गुनगुने पानी के साथ लें। १५ दिन में पेट के कृमि नष्ट हो जायेंगे।

प्रसवोत्तर : प्रसूति के बाद होनेवाले वायुप्रकोप व दुर्बलता को नष्ट करने के लिए सोंठ से बना 'सौभाग्य-शुंठी पाक' सुबह-शाम दूध के साथ लें। सौभाग्य-शुंठी पाक बनाने की विधि 'ऋषि प्रसाद' अंक १५५ में दी गयी है। बनाया हुआ पाक भी आश्रम की सेवा समितियों में मिल सकेगा। इससे दूध खुलकर आता है। जठराग्नि तथा बल की वृद्धि होती है व संभावित कई वातविकारों से रक्षा होती है।

सोंठ व अश्वगंधा को समान मात्रा में मिलाकर लेना डायबिटीज के रोगी के लिए विशेष लाभदायी है।

सावधानी : कुष्ठरोग, रक्तपित्त, पाण्डुरोग व ग्रीष्म तथा शरद ऋतु में सोंठ का उपयोग नहीं करना चाहिए।

अमावास्यां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां च सर्वशः।
अष्टम्यां सर्वपक्षाणां ब्रह्मचारी सदा भवेत्॥

'सभी पक्षों की अमावस्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी और अष्टमी - इन सभी तिथियों में सदा ब्रह्मचारी रहें अर्थात् स्त्री-समागम न करें।'

(महाभारत, अनुशासन पर्व, दानधर्म पर्व : १०४.२९-३०)

दिवसे सन्ध्ययोर्निद्रां स्त्रीसम्भोगं करोति यः।
सप्तजन्म भवेद्रोगी दरिद्रः सप्तजन्मसु॥

'दिन में और दोनों संध्याओं के समय जो सोता है या स्त्री-सहवास करता है, वह सात जन्मों तक रोगी और दरिद्र होता है।'

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्णजन्म खंड : ७५.८०)

प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते।

'जो लोग दिन में स्त्री-सहवास करते हैं, वे सचमुच अपने प्राणों को ही क्षीण करते हैं।'

(प्रश्नोपनिषद् : १.१३)

दिवाभिगमनं पुंसामनायुष्यं परं मतम्।

'दिन में स्त्री-समागम पुरुष के लिए बड़ा भारी आयु का नाशक माना गया है।'

(स्कंद पुराण, ब्राह्म खंड, धर्मारण्य माहात्म्य : ६.३५)

अपने से गलती हो तो भूलो मत, प्रायश्चित्त करो और दूसरे से गलती हो जाय तो बिल्कुल भूल जाओ कि इसने गलती की है।

पाठशाला में बच्चों को नाश्ते में अंडे न दें

हमारा भारत एक महान देश है। नन्हे-नन्हे बालक ही देश के कर्णधार हैं। ये बच्चे ऋषियों की संतानें हैं। इनका जन्म भगवान श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण जैसे अवतारों, गुरु नानकजी, कबीरजी, श्री रमण महर्षि, श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज, रानी मदालसा जैसे संतों-महापुरुषों, प्रह्लाद, ध्रुव, मीराबाई, शबरी जैसे भक्तों तथा छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप, चंद्रशेखर आजाद जैसे वीरों की इस पुण्यभूमि पर हुआ है। सात्त्विक खान-पान व सुसंस्कारों के सिंचन से ही ये महान नागरिक बन सकते हैं। परंतु आजकल महाराष्ट्र की कई पाठशालाओं में पोषक आहार के अंतर्गत बालकों को नाश्ते में उबले हुए अंडे नमक-मिर्च लगाकर दिये जा रहे हैं, जबरदस्ती खिलाये जा रहे हैं तथा बालकों की मानसिकता को विकृत किया जा रहा है। यह कहाँ तक उचित है ?

जैसा अन्न वैसा मन। सात्त्विक आहार से सात्त्विक मन का निर्माण होता है। कैलोरी (ऊर्जा) की दृष्टि से देखा जाय तो ६ अंडों में जितनी कैलोरी है उतनी एक केले में है। अंडे से ही मुर्गी के बच्चे उत्पन्न होते हैं। अंडे खाने से उनकी हत्या हो जाती है।

बच्चों को शाकाहारी, सात्त्विक, सुपाच्य नाश्ता दें, जो सस्ता भी होता है और अच्छा भी। इससे उनका अंतःकरण सात्त्विक बनेगा। पेट कब्रिस्तान तो है नहीं जो उसमें मांस, अंडे जैसे गंदे पदार्थ डालकर उसे दूषित करें। मन एक मंदिर है, उसको स्वच्छ रखें। सदाचारी जीवन जीयें। महाराष्ट्र सरकार को बालकों के योग्य आहार और विकास की ओर ध्यान देना चाहिए। अगर शिक्षक और प्रधानाध्यापक मिलकर सरकार की आँखें खोल दें तो बच्चों को सुपाच्य, सात्त्विक, शाकाहारी नाश्ता मिल सकता है।

- जानकी ए. चंदनानी
सचिव, अखिल भारतीय महिला संगठन।

भक्तों के अनुभव

सुई तक न ले जा सके !

६ मई २००४ को मैं अपने परिवारसहित अल्मोड़ा गया था। घर पर कोई नहीं था, लेकिन बेटी की शादी के गहने, वस्त्र तथा अन्य सामान पड़े थे। इसी बीच १५ मई २००४ की रात्रि को हमारे घर (जालंधर) में चोरों ने धावा बोल दिया। घर के सभी ताले तोड़कर वे अंदर प्रवेश कर गये।

१६ मई २००४ को जब हम घर के समीप पहुँचे तो मुहल्लेवालों ने बताया : ''आपके घर में चोरी हो गयी है। अपना सामान देख लें कि कितना नुकसान हुआ है ताकि पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करायी जा सके।'' मैंने घर में प्रवेश करके सामान की जाँच की तो देखा कि कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। मैंने मुहल्लेवालों से कह दिया : ''पुलिस को रिपोर्ट करने की जरूरत नहीं है। मेरा सारा सामान सुरक्षित है।''

मेरा पूरा परिवार बापूजी का उपासक है। घर में पूज्य सद्गुरुदेव की तस्वीरें लगी हुई हैं व हम नियमित 'श्रीआसारामायण' का पाठ करते हैं।

पूज्य गुरुदेव की ऐसी अद्भुत कृपा बरसी कि चोरों को घर से खाली हाथ लौटना पड़ा। बापू की माया बापू ही जानें! घर के सारे ताले तोड़ने के उपरांत भी चोर घर से एक सुई तक उठाने में समर्थ न हो सके! सच में, बापू कितने महान हैं!

- राधेसिंह रावत, जालंधर (पंजाब)

मंत्र : ॐ ह्रौं जूँ सः।

उपरोक्त मंत्र की १ माला २१ दिन तक लगातार करने से आधि-व्याधि का निवारण होता है। शनिवार को पीपल वृक्ष का स्पर्श कर जप प्रारंभ करें।

(ऋषि प्रसाद प्रतिनिधि)

बायड, जिला साबरकांठा (गुज.) का एक छोटा-सा ग्राम है लेकिन यहाँ के निवासियों की श्रद्धा छोटी नहीं है । संतवाणी श्रवण की, संतदर्शन की ललक उनमें छायी हुई थी । लोक-लाड़ले, जन-जन के प्यारे ब्रह्मनिष्ठ बापूजी ने भर-भर के जाम पिलाये अपनी रससिद्ध अमृतवाणी के । २९ जनवरी को यहाँ सत्संग-पूर्णाहुति के अवसर पर स्थानीय समिति द्वारा भंडारा भी संपन्न हुआ । आम आदमी के लिए भजन व भोजन और गरीबी रेखा से नीचेवालों के लिए वस्त्र, बर्तन व पैसे बाँटे गये । दिल्ली, अमदावाद, मुंबई और मुरादाबाद तक के लोग आये इस छोटे-से ग्राम के बड़े मैदान में !

'संदेश' दैनिक समाचारपत्र द्वारा प्रायोजित 'ज्ञान संस्कार उत्सव' के उपलक्ष्य में सरदार पटेल मैदान, नवरंगपुरा, अमदावाद में २९ जनवरी की शाम को पूज्यश्री का सत्संग संपन्न हुआ । जहाँ अमिट छाप छोड़ी ब्रह्मनिष्ठ बापूजी की उपस्थिति ने । पूज्यश्री ने शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास की विभिन्न अनुभूत युक्तियों से श्रोताओं को रू-बरू कराया ।

सत्संग-पूर्णाहुति के अवसर पर विराट जनमेदनी ने घी के १०,००० से अधिक दीपक प्रज्वलित कर पूज्य गुरुवर की महाआरती करके मनोहारी व भव्य दृश्य का सृजन किया ।

इसके बाद राजस्थान का नन्हा-सा ग्राम अनादरा भी पूज्य बापूजी के पदार्पण से आदर का पात्र बना । नाम तो अनादरा लेकिन लोगों के मुख से आदरपूर्वक निकल रहा था : '६-७ फरवरी को चलो अनादरा, बापूजी आ रहे हैं ।' और उमड़ पड़ा स्थानीय ग्रामीणों का हुजूम । पूज्यश्री इस ग्राम में पहली बार पधारे थे ।

'आदर तथा अनादर को धर जूते के तले' का संदेश देते हुए अपने आत्मस्वरूप की स्मृति का बोध देते, आनंदमय-सुखमय जीवन की कुंजियाँ बाँटते पूज्यश्री पहुँचे खेडब्रह्मा (गुज.) । अपने ब्रह्मस्वरूप में प्रतिष्ठित पूज्य बापूजी ने ८ व ९ फरवरी को यहाँ अपनी आत्मसुधामयी वाणी का रसपान कराया ।

पूर्वकाल में अनेक समर्थ ऋषियों-महर्षियों से सेवित इस ऐतिहासिक भूमि खेडब्रह्मा में बापूजी के आगमन से यहाँ की प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गये ।

आहवा डांग (गुज.) : आदिवासी व वनवासियों में जाग्रति लाने हेतु यहाँ आयोजित 'शबरी कुंभ' में ११ फरवरी को पूज्य बापूजी का पदार्पण हुआ । पूज्यश्री ने उनमें धार्मिक चेतना जगायी । इस कुंभ में आश्रम की ओर से 'जो आये खाये' के तर्ज पर आदिवासियों को भोजन कराया गया ।

'शबरी कुंभ' के आगामी आयोजनों की सभी व्यवस्थाओं में भी आयोजकों को सहयोग करने की घोषणा पूज्य बापूजी ने की ।

१२ फरवरी से १३ फरवरी की सुबह तक अमदावाद आश्रम में तथा दोपहर से रजोकरी आश्रम (दिल्ली) में पूर्णिमा दर्शन महोत्सव संपन्न हुआ ।

१४ फरवरी की शाम को भी दिल्ली में ध्यान योग का सत्र रखा गया, जिसमें शामिल साधकवृंद ध्यान योग के शांत सरोवर में गोता लगाकर धनभागी हुए ।

मुंबई : श्री चन्द्रशेखरानंद सरस्वती नेशनल एमिनेन्स प्रवचन-कथा के २००६-२००७ का सम्मान श्री काँची कामकोटि पीठ के ६९वें शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती द्वारा पूज्य बापूजी को समर्पित किया गया । यह सम्मानित अवार्ड मुंबई के 'शंभुकानद हॉल' में भक्तों, विद्यार्थियों, देशभर से आये शंकर मठ के साधुओं व शहर के गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में समर्पित किया गया । 'श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती पीठ' के शताब्दी महोत्सव के शुभअवसर पर यह कार्यक्रम आयोजित किया गया ।

नासिक (महा.) में आयोजित २२ से २६ फरवरी के ६ दिवसीय 'ध्यान योग साधना शिविर' के दूसरे दिन 'श्री कामकोटि पीठ' के ६९वें शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती पधारे । उन्होंने अपने उद्‌बोधन में विभिन्न प्रांतों से आये विद्यार्थियों की विशाल संख्या को संबोधित करते हुए कहा : ''आप सब भाग्यशाली हैं, जो अनुभवनिष्ठ बापूजी जैसे महापुरुष के सान्निध्य में अपने वैदिक संस्कारों के सिंचन का दैवी अवसर पा रहे हैं । मेरा आप सभी विद्यार्थियों को आशीर्वाद है ।''

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम

१२ से १५ मार्च, होली ध्यान योग शिविर ।
वरियाव रोड, जहाँगीरपुरा, सूरत । फोन : (०२६१) २७७२२०१-२.

डेहरी, जि. धार (म.प्र.) में वस्त्र तथा यवतमाल (महा.) में कंबल वितरित कर अपने कर्मों से ही आत्मदेव की उपासना करते पूज्यश्री के प्यारे-दुलारे शिष्य ।
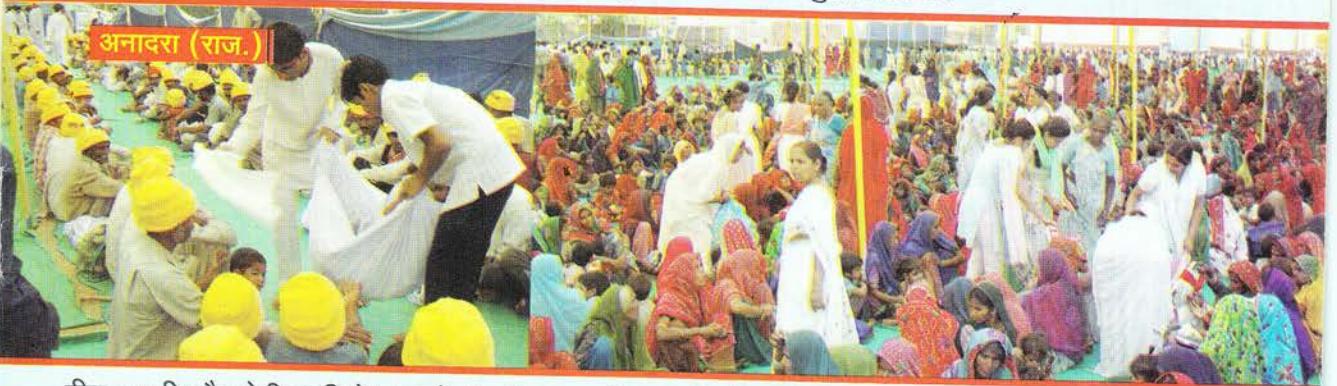
दीन, दुःखी और रोगी आदि के, दुखड़े निसदिन दूर करें । प्रभुप्रेम के मीठे रस से, सबका जीवन भरपूर करें ॥

नन्हा-सा गाँव हो या हो बड़ा महानगर, वहाँ अलख के औलिया पूज्यश्री बरसायें ज्ञानगागर और वहाँ उमड़ पड़ता है, श्रोताओं का महासागर ।
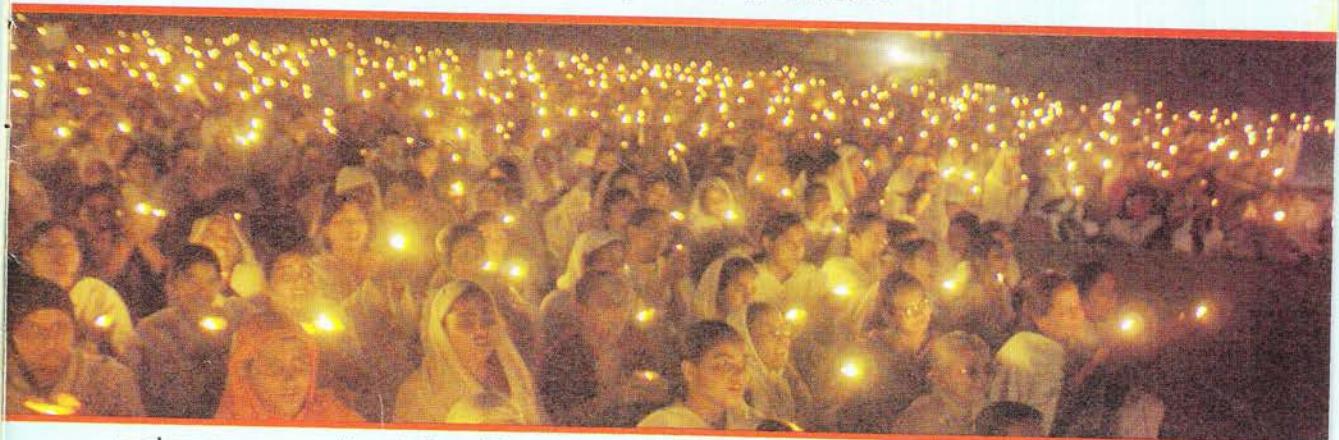
नवरंगपुरा, अमदावाद (गुज.) में आयोजित पूज्य बापूजी के सत्संग के दिन ही योगानुयोग से आश्रम की ३४वीं वर्षगाँठ का दिन भी आया तो भक्तों ने उसे १०,००० घी के दीये जलाकर महाआरती करके मनाया ।

POSTING AT RISHI PRASAD PSO BETWEEN 2ND TO 15TH OF E.M. & BACK ISSUE AT PSO AHD. REGD. UNDER RNI NO. 48873/91. POSTAL NO. GAMC 1132, WPP LIC NO. 207, BOTH ISSUED BY SSP AHD. & VALID UPTO 31-12-2008.
POSTAL REG.NO. DL (C) - 01/1130/06-08. POSTING AT N.D. PSO ON 5TH & 6TH OF E.M.
WPP LIC.NO. NW-9. REDG.NO. G2/MH/MR-NW-57/2006-08. POSTING AT MBI PATRIKA CHANNEL ON 9TH & 10TH OF E.M.

मुंबई में 'श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती पीठ शताब्दी महोत्सव' के सुअवसर पर 'श्री काँची कामकोटि पीठ' के ६९वें शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती और पूज्य बापूजी ।

नासिक (महा.) में हुए 'विद्यार्थी उत्थान शिविर' में 'श्री काँची कामकोटि पीठ' के शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती भी पधारे एवं उन्होंने वहाँ हो रहे संस्कार-सिंचन की खूब प्रशंसा की । इस शिविर को 'विद्यार्थी उत्थान महाकुंभ' की ही संज्ञा देनी पड़ेगी ।

परम पूज्य बापूजी के जीवन-उद्धारक दर्शन-सत्संग की विडियो सी.डी.

बापूजी का सत्संग एक ऐसी अमृत-धारा है जो स्वास्थ्य से लेकर मोक्षप्राप्ति तक के सभी विषयों का उत्तम मार्गदर्शन एवं शिक्षा प्रदान करती है ।
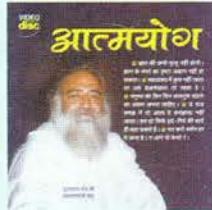
★ ज्ञान की कभी मृत्यु नहीं होती
★ ज्ञान के मरने का दृष्टा अज्ञान नहीं हो सकता

★ श्रद्धा-भक्ति सहित संत का दर्शन व्यर्थ नहीं जाता
★ अधिकारी 'यार की मौज' संत बन गये

★ विशुद्धानंदजी के योग-सामर्थ्य से मूर्ति चलकर आयी
★ सत्संग का त्याग करके स्वर्ग भी मिले तो स्वीकार नहीं करना चाहिए

★ अकाल मृत्यु टालनेवाला यमराज का मंत्र ★ पित्त प्रकोप दूर करने का उपाय
★ परमात्मा प्राप्ति की तीव्र-अति तीव्र तड़प हो तो २४ घंटे में ही वह प्रकट हो जायेगा

★ जिसने परम कार्य साधा वही साधु है...
★ दुःख को पैरों तले कुचलें और सुख को बाँटें

५ वी.सी.डी. का मूल्य रु. १७५ (डाकखर्च सहित रु. २१५)

इसमें रु. ४० डाकखर्च आता है । इतने ही डाकखर्च में आप अधिकतम २० वी.सी.डी. तक मँगवा सकते हैं । आश्रम तथा आश्रम की समितियों के सेवाकेन्द्रों पर भी ये उपलब्ध हैं ।